अथ पद्मपुराणोक्तकार्तिकमासमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतम् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कार्तिकमहात्म्य भाषाटीका लिख्यते । एक समय सूतजी महाराज नैमिषारण्यमें अट्ठासी सहस्र शौनकादि ऋषियोंसे कहने लगे कि जब देवर्षि नारदजी भगवान्‌का दर्शन करके चले गये तब सत्यभामाजी हर्षसे प्रसन्नमुख होकर लक्ष्मीपति भगवान् वासुदेवजीको संबोधित कर कहने लगी ॥ १ ॥ सत्यभामा कहने लगी कि भगवन्! मेरे अहोभाग्य हैं मैं कृतकृत्य हूं मेरा जीवन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ सूत उवाच ॥ श्रियः पतिमथामंत्र्य गते देवर्षिसत्तमे ॥ हर्षोत्फुल्लानना सत्या वासुदेवमथाब्रवीत् ॥१॥ सत्योवाच ॥ धन्यास्मि कृतकृत्यास्मि सफलं जीवितं मम ॥ मज्जन्मनो निदाने च धन्यौ तौ पितरौ मम ॥ २ ॥ यौ मां त्रैलोक्यसुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम् ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां वल्लभाहं यतस्तव ॥ ३ ॥ यस्मान्मयादिपुरुषः कल्पवृक्षसमन्वितः ॥ यथोक्तविधिना सम्यङ् नारदाय समर्पितः ॥ ४ ॥ यद्वार्त्तामपिजानंति भूमौ संस्थानजंतवः ॥ सोऽयं कल्पद्रुमो गेहे मम तिष्ठति सांप्रतम् ॥५॥

सफल हैं और मेरे जन्मदाता मातापिताकोभी धन्य है ॥ २ ॥ जिनके घरमें त्रिलोकीमें कमनीय मुझ परम सुंदरीका जन्म हुआ है और सोलहसहस्र स्त्रियोंके मध्यमें मैं आपकी परम प्यारी हूं ॥ ३ ॥ जिससे मैंने कल्पवृक्षसहित आदिपुरुष यथोक्तरीतिसे नारद ऋषिके समर्पण किये हैं ॥ ४ ॥ यह वार्ता पृथ्वीके जीवमात्र जानते हैं, यही कल्पवृक्ष अब मेरे घरमें विराजमान है ॥ ५ ॥

हे त्रिलोकीनाथ, हे लक्ष्मीपती भगवान्, मैं आपकी अत्यंत प्यारी हूं इसलिये हे मधुसूदन! मेरे मनमें आपसे कुछ पूछनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥ हे भगवन्! जो आप मेरा प्रिय करनेकी इच्छा करते हैं तो आप विस्तारपूर्वक मुझे कार्तिकमहात्म्यकी कथा सुनाओ उसे श्रवण करके मैंभी अपना हित करूं ॥७॥ और हे देव! किसी कल्पमेंभी मेरा आपके वियोग न हो. सूतजी बोले कि अपनी प्राणवल्ल-

त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा ॥ अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि किंचित्त्वां मधुसूदन ॥ ६ ॥ यदि त्वं मत्प्रियकरः कथयस्वात्र विस्तरम् ॥ श्रुत्वा तच्च पुनश्चाहं करोमि हितमात्मनः ॥ ७ ॥ यथाकल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् ॥ सूत उवाच ॥ इति प्रियावचः श्रुत्वा स्मेरास्यः स बलानुजः ॥ ८ ॥ सत्याकरं करे धृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् ॥ निषिध्यानुचरं लोकं सविलासः प्रियान्वितः ॥ ९ ॥ प्रहस्य सत्यामामंत्र्य प्रोवाच जगतां पतिः ॥ तत्प्रीतिपरितोषोत्थलसत्पुलकितांगकः ॥ १० ॥

भाके इन वचनोंको सुनकर मुसकुराते हुए श्रीकृष्णचंद्रजी ॥ ८ ॥ सत्यभामाका हाथ अपने हाथमें पकड कल्पवृक्षकी छायामें लेगये और सब सेवकोंको उस स्थानमें आनेका निषेध कर दिया और विलासयुक्त अपनी प्यारीको साथ लेकर बैठते हुए ॥ ९ ॥ और हंसकर जगत्पति भगवान् सत्यभामाका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर उसके प्रेमसे संतुष्ट और पुलकायमान होकर कहने लगे ॥ १० ॥

श्रीकृष्णचंद्रजीने कहा हे प्यारी! आपसे अधिक मुझको और कोई स्त्री प्यारी नहीं है, संपूर्ण १६ सहस्र स्त्रियोंमें तूही मेरे प्राणसमान है ॥ ११ ॥ हे प्रियतमे तेरे लिये देवताओंसमेत इन्द्रसेभी विरोध करता हुआ, हे कांते! जो बात आपने पूछी है उस महाअद्भुत वार्ताको आप श्रवण कीजिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले एक दिन श्रीकृष्णभगवान् सत्यभामाकी प्रियकामनाके निमित्त गरुडपर सवार हो इन्द्रलोकको

श्रीकृष्ण उवाच ॥ न मे त्वत्तः प्रियतमा काचिदन्या नितंबिनी ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां प्रिया प्राणसमा ह्यसि ॥ ११ ॥ त्वदर्थं देवराजोऽपि विरुद्धो दैवतैः सह ॥ त्वया यत्प्रार्थितं कांते शृणु तच्च महाद्भुतम् ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा भगवान्कृष्णः सत्यायाः प्रियकाम्यया ॥ वैनतेयं समारूढ इन्द्रलोकं तदागमत् ॥ १३ ॥ कल्पवृक्षं याचितवान्सोऽवदन्न ददाम्यहम् ॥ वैनतेयस्तदा क्रुद्धस्तदर्थं युयुधे तदा ॥ १४ ॥ गोलोके गरुडो गोभिर्युद्धं चैव चकार सः ॥ गरुडस्य च तुंडेन पुच्छकर्णास्तदाऽपतन् ॥ १५ ॥

जाते हुए ॥ १३ ॥ और वहां जाकर कल्पवृक्ष मांगा तब इन्द्रने निषेध कर दिया कि मैं नहीं दूंगा। तब गरुडजीने क्रोधित होकर उसके लिये घोर युद्ध किया ॥ १४ ॥ और गोलोकमें गरुडजीने गौओंसे युद्ध किया और गरुडजीकी चोंचकी चोटसे उनके कान और पूछ कटकटकर गिर पडे ॥ १५ ॥

उनका रुधिर जो पृथ्वीपर गिरा उससे तीन वस्तु उत्पन्न होती हुईं अर्थात कानसे तमाखू, पूंछसे गोमी और रुधिरसे मेहंदी भई हे प्रिये! मोक्षकी कामनावाले मनुष्योंको उचित है कि इन तीनों वस्तुओंका कदापि सेवन न करे दूरहीसे त्याग देवे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब गौमी कुपित होकर अपनी सींगोंसे गरुडको मारती हुई और गरुडके तीन पंख पृथ्वीमें गीर पडे ॥ १८ ॥ इनमें पहिले पंखसे नीलकंठ,

रुधिरोऽपि पपातोर्व्यां त्रीणि वस्तूनि चाभवन् ॥ कर्णेभ्यश्च तमालं च पुच्छाद्गोमी बभूव ह ॥ १६ ॥
रुधिरान्मेहदी जाता मोक्षार्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ तस्मादेतत्त्रयं चैव नहि सेव्यं नरैः प्रिये ॥ १७ ॥
गावस्ता गरुडं शृङ्गैः प्रजह्रुः कुपितास्तदा ॥ गरुत्मतस्त्रयः पक्षाः पृथिव्यामपतन्प्रिये ॥ १८ ॥
पक्षात्प्राथमिकाज्जातो नीलकंठः शुभात्मकः ॥ द्वितीयाच्च मयूरो वै चक्रवाकस्तृतीयतः ॥ १९ ॥
दर्शनाद्वै त्रयाणां तु शुभं फलमवाप्नुयात ॥ तस्मादिदमुपाख्यानं वर्णितं च मया प्रिये ॥ २० ॥

दूसरेसे मोर और तीसरेसे चकवचकवी उत्पन्न होते भये ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! इन तीनोंके दर्शनसे शुभफलकी प्राप्ति होय है इसीसे यह उपाख्यान मैंने तेरे सन्मुख कहा है ॥ २० ॥

गरुडजीके दर्शनसे जो फल मिलता है वही इन तिनोंके दर्शनसे मिलता है और मेरे लोककी प्राप्ति होय है ॥ २१ ॥ हे प्रिये ! जो वस्तु न देने योग्य है, न करने योग्य है, और न कहने योग्य है, सो सब बातें मैं आपके प्रियके लिये मैं करुंगो ॥ २२ ॥ हे प्रिये ! जो आपके मनमें हो सो सब पूछिये मैं आपके सन्मुख कहूंगा- यह सुन सत्यभामा बोली हे प्रभो ! मैंने पूर्वजन्ममें कोन कोनसे दान व्रत वा तप

सुपर्णदर्शनाच्चैव यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं प्राप्नुयात्तेषां दर्शनाद्दै ममालयम् ॥ २१ ॥
अदेयमपि वाकार्यमकथ्यमपि यत्पुनः ॥ तत्करोमि कथं प्रश्नं कथयामि न मत्प्रिये ॥ २२॥ तत्पृच्छ सर्वं कथये यत्ते मनसि वर्तते ॥ सत्योवाच ॥ दानं व्रतं तपो वापि किं न पूर्वं मया कृतम् ॥ २३ ॥ येनाहं मर्त्यजा मर्त्यभवानीताऽभवं किल ॥ तवांगार्द्धहरा नित्यं गरुडासनगामिनी ॥ २४ ॥ इन्द्रादिदेवतावास-मगमं या त्वया सह ॥ अतस्त्वां प्रष्टुमिच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ॥ २५ ॥

नहीं किये हैं ॥ २३ ॥ जिसके कारण मुझको मर्त्यलोकमें जन्म लेना पडा है, और मर्त्यलोकमें आकर आपकी अर्द्धांगी हुई और गरुडपर सवार भई हूं ॥ २४ और आप मोहि संग लेकर इन्द्रादि देवताओंके स्थानमें फिरते भये हो, अतएव मैं आपसे पूंछू हूं कि मैंने ऐसे कोनसे शुभकर्म किये हैं ॥ २५ ॥

मेरो पूर्वजन्ममें कैसो स्वभाव हो, कोनकी पुत्री होती हुई॰ तब भगवान् बोले, हे कांते! तू ध्यानपूर्वक सुन॰ जो जो तैने पूर्व जन्ममें शुभ कर्म किये हैं सो सब सुन ॥ २६ ॥ हे सुन्दरी! जो आपने पुण्य और व्रतादिक किये हैं उन बातको मैं तेरे साम्हने कहूं हूं, जो कर्म तुमने किये हैं, और जिनकी तुम पुत्री हीं सो सब कहूं हूं ॥ २७ ॥ पूर्व समयमें कृतयुगके अंतमें मायापुरीमें अत्रिगोत्रमें एक देवशर्मा

भवांतरे च किंशीला का वाहं कस्य कन्यका ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाः कांते यत्कृतं पूर्वजन्मनि ॥ २६ ॥ पुण्यं व्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामि ते ॥ यत्कर्म तु कृतं पूर्वं यस्य त्वं कन्यका प्रिये ॥ २७ ॥ आसीत्कृतयुगस्यांते मायापुर्यां द्विजोत्तमः ॥ आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदांगपारगः ॥ २८ ॥ आतिथेयोऽग्निशुश्रूषी सौरव्रतपरायणः ॥ सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः ॥ २९ ॥ तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता ॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चंद्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ ३० ॥

नाम ब्राह्मण वेदवेदांगका जाननेवाला होता हुआ ॥ २८ ॥ वह ब्राह्मण अतिथिसत्कारपरायण, अग्निहोत्रकर्ता, सूर्यव्रत करनेवाला, सूर्यकी आराधना करता हुआ, साक्षात् सूर्यके समान होता हुआ ॥२९॥ उसकी वृद्धावस्थामें एक गुणवती नामकी कन्या हुई उसका विवाह उस पुत्रहीन ब्राह्मणने चंद्रनामके अपने शिष्यके साथ करता हुआ ॥ ३० ॥

और उसके पुत्रके समान मानता और वह ब्राह्मणको पिताके समान मानता हुआ. एक समय वे दोनों कुश और समिधा लेनेकेलिये वनको गये ॥ ३१ ॥ हिमालयकी तरहटीमें भ्रमते भ्रमते उनने एक घोर राक्षस आता हुआ देखा ॥ ३२ ॥ उस राक्षसके भयसे उसके सब अंग शिथिल होगये, भागनेकी सामर्थ्य न रही तब वह कालके सदृश राक्षस उन दोनोंको मार डालता हुआ ॥ ३३ ॥ तब

तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी ॥ तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ ॥ ३१ ॥ हिमाद्रिपादोपवने चेरतुस्तावितस्ततः ॥ तौ तस्मिन्राक्षसं घोरमायांतं संप्रपश्यतुः ॥३२॥ भयविह्वलसर्वांगावसमर्थौ पलायितुम् ॥ निहतौ रक्षसा तेन कृतांतसमरूपिणा ॥ ३३ ॥ तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः ॥ वैकुंठभवनं नीतौ मद्गणैर्मत्समीपगैः ॥ ३४ ॥ यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्य्यपूजादिकं कृतम् ॥ तेनाहं कर्मणा ताभ्यां सुप्रीतो ह्यभवं किल ॥ ३५ ॥

उन दोनोंको उस क्षेत्रके प्रभावसे और उनके धर्मात्मा होनेके कारण मेरे पार्षद वैकुंठ लोकमें लेजाते भये ॥ ३४ ॥ उन दोनोंनें जीते जी सूर्यकी पूजाआदि किई उस कर्मसे मैं दोनोंपर अति प्रसन्न भयो ॥ ३५ ॥

शिव, सूर्य, गणेशजी, विष्णु, देवी इन सब देवताओंकी उपासना करनहारे मेरे ऐसे प्राप्त होय है जैसे वर्षाका जल समुद्रको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ मैं एकही हूं और शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु और शक्तिरूपसे कर्म और नामद्वारा पांच प्रकारका होता हूं जैसे एक देवदत्त पिता भ्राता आदि नामोंसे जुदा जुदा होता है ॥ ३७ ॥ तब तो वे दोनों मेरे भवन वैकुंठमें वासन करन लगे, विमानपर चढन लगे

शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ॥ मामेव प्राप्नुवंतीह वर्षांभः सागरं यथा ॥ ३६ ॥ एकोऽहं पंचधा जातः क्रियया नामभिः किल ॥ देवदत्तो यथाकश्चित्पुत्रभ्रात्रादिनामभिः ॥३७॥ ततस्तु तौ मद्भवनाभिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ॥ मत्तुल्यरूपौ मम सन्निधानगौ दिव्यांगनाचंदन-भोगभोगिनौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यासंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ ॥ पितृभर्तृजदुःखार्ता करुणं पर्यदेवयत् ॥१॥

सूर्यकी कांतिके समान देदीप्यमान, मेरे समान रूप हो मेरे समीप वास करन लगे तथा दिव्य स्त्री और दिव्य चंदनादिका भोग भोगने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकान्विते कार्तिकमहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले—तब गुणवती अपने पिता और पतिका वध राक्षसद्वारा सुनकर अपने पिता और पतिके दुःखसे दुःखित हो रुदन करती हुई ॥ १ ॥

हे स्वामी ! हे पिता ! आप मोय छोडकर कहां चले गये, हे नाथ ! मैं आपके विना कहा करूं मैं अनाथ हूं अबला हूं ॥ २ ॥ हे नाथ ! मैं पतिसे दुःखित हुईका भरण पोषण कोन करेगा कोन खाने पीनेको देगा, मेरे पास कुछ नहीं है और काम करनेमें चतुरभी नहीं हूं घरमें बैठी हूं ॥ ३ ॥ मैं हतभागिनी, सुख आशा और जीवनसे हत हुई हूं अब मैं किसकी शरण जाऊं जो मेरे दुःखको दूर करै

गुणवत्युवाच ॥ हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छथः क्व मया विना ॥ बालाहं किं करोम्यद्य ह्यनाथा भवतोर्विना ॥२॥ को नु मामास्थितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः ॥ अकिंचित्कुशलां स्नेहात्पालयेत्पतिदूषिताम् ॥३ ॥ हतभाग्या हतसुखा हताशा हतजीविता ॥ शरणं कं व्रजाम्यद्य यो मे दुःखं प्रमार्जयेत् ॥ ४ ॥ क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि किं करोमि यथाघृणम् ॥ विधात्रा हा हतास्म्यद्य कथं जीवामि बालिशा ॥५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एवं बहु विलप्याथ कुररीव भृशातुरा ॥ पपात भूमौ विकला रंभा वातहता यथा ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ कहां जाऊं कहां बैठूं कहा करूं मैं घृणित हो गई हूं विधाताका मेरे ऊपर कोप हुआ है अब मैं कैसे जीऊं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले कुररीकी तरह विलाप करती हुई वह पृथ्वीपर रोके गिरपडी जैसे आंधीसे केला उखड पडे हैं ॥ ६ ॥

पृथ्वीपर गिरी थोडी देरमें सावधान होनेपर फिर विलाप करने लगी और शोकसमुद्रमें निमग्न होकर हाय हाय करन लगी ॥ ७ ॥ वह गुणवती घरके सब माल असबाबको बेचकर यथाशास्त्र बहुत सावधानीसे उनकी पारलौकिक क्रिया करती हुई ॥ ८ ॥ और उसी नगरीमें विष्णुभगवान्‌की भक्तिमें तत्पर होकर शुद्ध, शान्त, सत्य और जितेन्द्रियतासे वास करती हुई ॥ ९ ॥ और अपने जीवनपर्यन्त

चिरादाश्वस्य सा भूमौ विलप्य करुणं बहु ॥ निमग्ना शोकजलधौ दुःखार्ता समवर्तत ॥ ७ ॥ सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्म तत् ॥ तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौक्यमतंद्रिता ॥ ८ ॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासं प्रभृतिजीविनी ॥ विष्णुभक्तिरता शान्ता सत्यशौचा जितेंद्रिया ॥९॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् ॥ एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्तिकस्य च ॥ १० ॥ एतद्व्रतद्वयं कांते ममातीव प्रियंकरम् ॥ भुक्तिमुक्तिकरं पुण्यं पुत्रसम्पत्तिदायकम् ॥ ११ ॥

एकादशीका व्रत और कार्तिकमासके व्रतादि करत रही ॥ १० ॥ हे कांते ! ये दोनों व्रत मोय अत्यन्त प्यारे हैं इन व्रतोंके धारण करनेसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होय है, पुण्य होता है पुत्र और संपत्ति मिलते हैं ॥ ११ ॥

कार्तिकमासकी तुला राशिपर सूर्यके आगमनके समय जो प्रातःकाल स्नान करैं हैं वे महापापीभी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीके वनका पालन करते हैं वे विष्णुके रूप हैं ॥ १३ ॥ विष्णुभगवान्के मन्दिरका झाडना, सथिया लगाना, विष्णुकी पूजा आदि जो मनुष्य करैं हैं वे जविन्मुक्त होय हैं ॥ १४ ॥ ऐसे कार्तिकमें जो तीन दिनभी करैं हैं

कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नास्यंति ते मुक्ता महापातकिनोऽपि च ॥ १२॥
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् ॥ कार्तिके मासि कुर्वंति ते नरा विष्णुमूर्तयः ॥ १३ ॥ संमा-
र्ज्जनं गृहे विष्णोः स्वस्तिकादिनिवेदनम् ॥ विष्णोः पूजां च ये कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः ॥ १४ ॥
इत्थं दिनत्रयमपि कार्तिके ये प्रकुर्वते ॥ देवानामपि ते वंद्याः किं यैराजन्मतः कृतम् ॥ १५ ॥ इत्थं
गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत् ॥ नित्यं विष्णोश्च पूजायां भक्त्या तत्परमानसा ॥ १६ ॥

वे देवताओंद्वारा पूज्य होते हैं, और जो जन्मभर करैं हैं, उनका तो कहनाही क्या है ॥ १५ ॥ इस प्रकार वह गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकके व्रत करती रही और भक्तिपूर्वक जी लगाकर विष्णुभगवान्का नित्यही पूजन करती हुई ॥ १६ ॥

एक समय वृद्धावस्थाके कारण दुर्बल होगई थी और ज्वरसे पीडित होनेपरभी धीरे धीरे गंगास्नानको जाती हुई ॥ १७ ॥ ज्योंही जलमें घुसी जाडेके मारे थरथर कांपने लगी तबही उस घबडाई हुईने आकाशसे उतरताहुआ एक विमान देखा ॥ १८॥ शंख चक्र गदा पद्म आदि आयुधोंसे उपलक्षित विष्णुके रूप धारण करनेहारे पार्षद गरुडकी ध्वजासे अंकित अप्सराओंद्वारा सेवित ऐसे विमानमें बैठायकर

कदाचिज्जरसा साथ कृशांगी ज्वरपीडिता ॥ स्नातुं गंगां गता कांते कथंचिच्छनकैस्तदा ॥ १७ ॥ यावज्जलांतरगता कंपिता शीतपीडिता ॥ तावत्सा विह्वलापश्यद्विमानं यांतमंबरात् ॥ १८ ॥ शंखचक्रगदापद्मैरायुधैरुपलक्षिताः ॥ विष्णुरूपधराः सम्यग्वैनतेयध्वजांकितम् ॥ १९ ॥ आरोहयन्विमाने तामप्सरोगणसेविताम् ॥ चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुंठमनयन्गणाः ॥ २० ॥ अथ सा तद्विमानस्था ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ कार्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यं गताभवत् ॥ २१ ॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम् ॥ आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥ २२ ॥

चमर ढोंरते हुए वैकुंठको लेगये ॥ १९ ॥२०॥ तब वह जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान कान्तिवाली विमानमें बैठीहुई कार्तिकके व्रतके प्रभावसे मेरे समीप आतीहुई ॥२१॥ जब ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे मैंने पृथ्वीमें अवतार लियो तब वे गणभी मेरे संग आये॥२२॥

हे भामिनि ये सब यादव मेरे गण हैं और तुम्हारे पिता देवशर्मा यही सत्राजित होते हुए ॥ २३ ॥ और चन्द्रशर्मा जो तुम्हारो पति हों वह अक्रूर है और हे शुभे तुम वही गुणवती हो कार्तिकके स्नानके प्रभावसे तुम मेरे लिये अत्यंत प्रिय हो ॥ २४ ॥ तुमने जो मेरे मंदिरके द्वारपर तुलसीकी बगीचा स्थापित करी उसीसे यह कल्पवृक्ष तुम्हारे अंगनमें विराजमान है ॥ २५ ॥ कार्तिकमें जो पहिले आपने

एते हि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनि ॥ पिता ते देवशर्माभूत्सत्राजिदभिधो ह्यथ ॥ २३ ॥
यश्चन्द्रशर्मा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभे॥कार्तिकस्नानपुण्येन बहु मे प्रीतिदायिनी ॥ २४ ॥ मद्द्वारि
यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता ॥ तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवांगणगतः शुभे ॥ २५ ॥ कार्तिके दीपदानं
च त्वया च यत्कृतं पुरा ॥ त्वद्देहगेहसंस्थेयं तस्माल्लक्ष्मीः स्थिराभवत् ॥ २६ ॥ यच्च व्रतादिकं सर्वं
विष्णवे भर्तृरूपिणे ॥ निवेदितवती तस्मान्मम भार्यात्वमागता ॥ २७ ॥

दीपदान किये हैं उसी फलसे आपके देह और घरमें लक्ष्मीजी अनलरूपसे निवास करें हैं ॥ २६ ॥ जो संपूर्ण व्रतादिक आपने प्रतिभावसे विष्णुभगवान्में अर्पण करे हैं उनके फलसे मेरी भार्या हुई हो ॥ २७ ॥

और तुमने मरणसे पूर्व जन्मपर्यन्त जो कार्तिकके व्रत किये हैं इससे तुम्हरा वियोग मुझसे कदापि नहीं होता ॥ २८ ॥ ऐसेही जो मनुष्य कार्तिकमें व्रत करेंगे वे तुम्हारी तरह मेरे लिये प्रिय होंयगे ॥ २९ ॥ और यज्ञ दान व्रत और तपके करनेवाले मनुष्योंको कार्तिकके व्रतोंका सोलहवें भागका फल नहीं प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ सूतजी बोले जब सत्यभामाजीने भगवान्के मुखसे अपने पूर्व-

आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतं कार्तिकव्रतम् ॥ कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥ २८ ॥ एवं ये कार्तिके मासे नरा व्रतपरायणाः ॥ मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि प्रीतिदा त्वं यथा मम ॥२९॥ यज्ञदानव्रततपः-कारिणो मानवाश्च ये ॥ कार्तिकव्रतपुण्यस्य नाप्नुवंति कलामपि ॥३०॥ सूत उवाच ॥ इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राग्जन्मपुण्यभववैभवजातहर्षा ॥ विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद सत्या ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जन्मकी कथा श्रवण करी तब तो बडी प्रसन्न होती हुई और त्रिलोकीके स्वामी विश्वकेनाथ श्रीकृष्णभगवान्को नमस्कार करके बोली ॥ ३१ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकान्विते कार्तिकमहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सत्यभामा बोली हे भगवन् ! आप कालके स्वरूप हैं और इस कालके संपूर्ण अवयव अर्थात् भाग समान हैं तो कार्तिकमास सब मासोंमें क्यों श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ हे देवदेवेश ! सब तिथियोंमें एकादशी और सब महिनोंमें कार्तिकका महिना आपको क्यों प्रिय है इसका कारण कहिये ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे कान्ते आपने अच्छा प्रश्न किया आप एकाग्र चित्त लगाकर बेनके पुत्र पृथु और महर्षि

सत्यभामोवाच ॥ सर्वेऽपि कालावयवास्तव कालस्वरूपिणः ॥ समानास्तु कथं नाथ मासानां कार्तिको वरः ॥ १ ॥ एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिकः प्रियः ॥ कथं ते देवदेवेश कारणं तत्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया कांते शृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ ३ ॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुना प्रिये ॥ उवाच कार्तिकाधिक्ये कारणं सर्वविन्मुनिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ शंखनामाभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः ॥ त्रिलोकीमथने शक्तो महाबलपराक्रमः ॥ ५ ॥

नारदका संवाद सुनो ॥ ३ ॥ हे प्रिये ऐसेही पहिले पृथुने नारदसे पूछा तब सब बातोंके जाननहारे महर्षि नारदने कार्तिकमासकी श्रेष्ठता कही ॥ ४ ॥ नारदजी बोले पहिले सागरका पुत्र शंखनामक राक्षस होता हुआ यह बडा पराक्रमी और त्रिलोकीके मथनेमें समर्थ हुआ ॥ ५ ॥

वह संपूर्ण देवताओंको जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल इन्द्रादि संपूर्ण लोकपालोंपर अपना अधिकार करता हुआ ॥ ६ ॥ सब देवता उसके भयके मारे कांपने लगे और अपने अपने स्त्रीपुत्र तथा बंधु बांधवोंको लेकर बहुत वर्षपर्यन्त सुमेरु पर्वतकी गुफाओंमें वास करते हुए ॥ ७ ॥ जब सुमेरु पर्वतकी गुहारूप दुर्गमें देवता स्थित होकर दृढतासे रहने लगे तब शंखासूर विचार करता हुआ ॥ ८ ॥ कि यद्यपि

जित्वा देवांस्तिरस्कृत्य स्वर्लोकात्स महासुरः ॥ इंद्रादिलोकपालानामधिकारांस्तथाहरत् ॥ ६ ॥
तद्भयात्कंपिता देवाः सुवर्णाद्रिगुहां गताः ॥ न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधाः सबांधवाः ॥ ७ ॥ सुवर्णाद्रि
गुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशा यदि। बद्धासना बभूवुस्ते तदा दैत्यो व्यचारयत् ॥ ८ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा
मया यद्यपि निर्जिताः ॥ लक्ष्यंते बलयुक्तास्ते करणीयं मयात्र किम् ॥ ९ ॥ अद्य ज्ञातं मया देवा वेदमंत्र
बलान्विताः ॥ तान्हरिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवंति वै ॥ १० ॥

मैंने देवताओंसे सब अधिकार छीन लिये हैं और विजयभी कर लिये हैं तौभी बलवान् प्रतित होंय हैं । अब क्या करना चाहिये ॥ ९ ॥ अब जान पडी सब वेदमंत्रोंसेयुक्त होनेकारण बडे बलवान् होय गये हैं इससे उनके वेदमंत्रोंका हरण करलूंगा तब वे सब बलहीन हो जांयगे ॥ १० ॥

नारदजी बोले ऐसे विचारके वह असुर विष्णुभगवान्‌को नींदमें ग्रस्त देख स्वयंभू ब्रह्माजीके सत्य लोकसे वेदोंका हरण करताहुआ ॥ ११ ॥ जब वह असुर उन वेदोंको निकालकर चलनेको तत्पर होता हुआ तब वे उसके भयके मारे यज्ञके मंत्र और बीजोंसमेत जलमें प्रवेश करते हुए ॥ १२ ॥ तब तो वह शंखासुरभी उन्हें ढूंढता हुआ समुद्रके भीतर घुसकर इधर उधर भ्रमता हुआ परंतु वे

नारद उवाच ॥ इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ॥ सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानादिस्वयंभुवः ॥११॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्तु निराक्रमन् ॥ तोयानि विविशुर्यज्ञमंत्रबीजसमन्विताः ॥ १२ ॥ तान्मार्गमाणः शंखोऽपि समुद्रांतर्गतोऽभ्रमत ॥ न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥ १३ ॥ अथ ब्रह्मासुरैः सार्द्धं विष्णुं शरणमन्वगात ॥ पूजोपहारमादाय वैकुंठभवनं गतः ॥ १४ ॥ तत्र तस्य प्रबोधाय गीतवाद्यादिकाः क्रियाः ॥ चक्रुर्देवास्तदा गंधधूपदीपान्मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

वेद एक स्थानमें कहींभी प्राप्त न भये ॥ १३ ॥ पीछेसे ब्रह्माजीभी सब देवताओंको संगले पूजाकी सब सामिग्री इकट्ठी कर वैकुंठ लोकमें जाय विष्णुभगवान्‌की शरणमें प्राप्त होते हुए ॥ १४ ॥ वहां उनके जगानेके निमित्त सब देवता गाने बजाने लगे और गंध धूप दीप बारबार देने लगे ॥ १५ ॥

उनकी भक्तिसे संतुष्ठ होकर भगवान्ने नेत्र खोले और सब देवतानने सहस्र सूर्यके समान कांतिवाले विष्णुभगवान्के दर्शन किये ॥ १६ ॥ और षोडशोपचारसे पूजा करके दंडवत् पृथ्वीपर गिर पडे तब तो माधव भगवान् उनके कहते भये ॥ १७ ॥ विष्णु बोले हे देवगण ! मैं तुम्हारे भजनकीर्तनआदि मंगलीक कार्योंसे प्रसन्न हुआ हूं और तुम्हारी जो जो अभिलाषा और मनोकामना हैं उन सबको

अथ प्रबुद्धो भगवांस्तद्भक्तिपरितोषितः ॥ ददृशुस्ते सुरास्तत्र सहस्रार्कसमद्युतिम् ॥ १६॥ उपचारैः षोडशभिः संपूज्य त्रिदशास्तदा ॥ दंडवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ माधवः ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच॥ वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ मनोऽभिलषितान्कामान्सर्वानेव ददामि वः ॥ १८ ॥ इषस्य शुक्लैकादश्यां यावदुद्बोधिनी भवेत् ॥ निशातुर्यांशशेषे ये गीतवाद्यादि मंगलम् ॥ १९ ॥ कुर्वंति नित्यं मनुजा भवद्भिर्यद्यथाकृतम् ॥ ते मत्प्रीतिकरा नित्यं मत्सांनिध्यं व्रजंति हि ॥ २० ॥

पूर्ण करूंगा यही वर देताहूं ॥ १८ ॥ आश्विन शुक्लपक्षकी एकादशीसे देवउठनी एकादशीतक पहरभर रात्रि रहेसे जो मनुष्य तुम्हारी तरह गीतिवादित्र आदि मंगल कार्य करेंगे वे मेरे प्रसन्न करनेवाले होंयगे और मेरे समीप प्राप्त होंयगे ॥ १९ ॥ २० ॥

पाद्य अर्घ्य आचमन आदि जो तुम मेरे निमित्त लाये हो यह अनंतगुण होयकर तुम्हारे सुखको कारण होंयगें ॥ २१ ॥ शंखासुर जिन वेदोंको हर लाया है वे सब जलमें स्थित हैं उन्हें मैं शंखासुरको मारकर लाऊंगो ॥ २२ ॥ अबसे बीजमंत्र समेत सब वेद प्रतिवर्ष कार्तिकके महिनामें सदा जलमें निवास करेंगे ॥ २३ ॥ मैं मत्स्यरूप धारण कर जलमें जाऊं हूं तुमभी संपूर्ण मुनियोंको लेकर मेरे संग

पाद्यार्घ्याचमनीयादि यद्भवद्भिरुपाहृतम् ॥ तदनंतगुणं यस्माज्जातं वः सुखकारणम् ॥ २१ ॥ वेदाः शंखाहृताः सर्वे तिष्ठंत्युदकसंस्थिताः ॥ तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनंदनम् ॥ २२ ॥ अद्यप्रभृति वेदास्तु मंत्रबीजसमन्विताः ॥ प्रत्यब्दं कार्तिके मासि विश्रमंत्यप्सु सर्वदा ॥ २३ ॥ मत्स्यरूपोऽहमपि च भवामि जलमध्यगः ॥ भवंतोऽपि मया सार्द्धमायांतु समुनीश्वराः ॥२४ ॥ लोकेऽस्मिन्ये प्रकुर्वंति प्रातःस्नानं नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे यज्ञावभृथैः सुस्नाताः स्युर्न संशयः ॥ २५ ॥ ये कार्तिकव्रतं सम्यक्कुर्वंति मनुजाः सदा ॥ ते देहांते त्वया शक्र प्राप्या मद्भवनं सदा ॥ २६ ॥

आओ ॥ २४ ॥ इस लोकमें जो अच्छे मनुष्य प्रातःकाल स्नान करें हैं वे निश्चय यज्ञांत स्नानके फलको प्राप्त होंय हैं ॥ २५ ॥ जो कार्तिकमें सदा व्रत करें है उनको हे इन्द्र ! तुम मेरे लोकमें पहुंचानेके योग्य हो ॥ २६ ॥

हे यम ! तुम सदा उनकी विघ्नोंसे अच्छी तरह रक्षा करते रहो और हे वरुण ! तुम उनको पुत्र पौत्र आदि देते रहो ॥ २७ ॥ हे कुबेर ! तुम मेरी आज्ञासे उनकी धनवृद्धि करो, जिससे वह मेरा रूप धारण कर साक्षात् जीवन्मुक्त होजाय ॥ २८ ॥ जो जन्मसे मरणपर्यन्त विधिपूर्वक इन व्रतनकू धारण करें है वे तुह्मारे द्वाराभी मानने योग्य हैं ॥ २९ ॥ जैसे तुमने मुझे एकादशीको जगाया है इसलिये यह तिथि सदा मानने योग्य

विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां सम्यक्कार्यं त्वया यम ॥ देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसंततिः ॥ २७ ॥ धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वया कार्या ममाज्ञया ॥ मम रूपधरः साक्षाज्जीवन्मुक्तो भवेद्यतः ॥ २८ ॥ आजन्ममरणाद्येन कृतमेतद्व्रतोत्तमम् ॥ यथोक्तविधिना सम्यक्स मान्यो भवतामपि ॥ २९ ॥ एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥ अतश्चैषा तिथिर्मान्या सातीव प्रीतिदा मम ॥ ३० ॥ व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं सान्निध्यकृन्मे न तथान्यदस्ति ॥ नान्यानि तीर्थानि तपांसि यज्ञाः स्वर्लोकदास्तेन यथा सुरोत्तमाः ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

है यह मेरे लिये अत्यन्त प्यारी है ॥ ३० ॥ हे देवगणो ! भलीभांतिसे करे गये ये दोनों व्रत मनुष्यको मेरे समीप पहुंचाय दे हैं ऐसे कोई व्रत नहीं हैं अन्य तीर्थ तप यज्ञ स्वर्गलोकके देनहारे हैं पर मेरे लोकको नहीं देय हैं ॥ ३१ ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारदजी बोले—ऐसे कहकर विष्णु भगवान् मछलीका रूप धारण कर विंध्याचलवासी कश्यपकी अंजलीमें प्राप्त होते हुए ॥ १ ॥ उस मछलीपर दया करके मुनिने उसको कमंडलुमें डाल लिया, जब यह उसमें न समाई तब कुआमें गेरी ॥ २ ॥ जब कुआमेंभी न समाई तब तलावमें डारत भये जब वहांभी न समाई तब समुद्रमें डारी गईं वहां वह बढन लगी ॥ ३ ॥ तब मत्स्यरूपधारी भगवान् शंखासुरको

नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक् ॥ ययौ तदांजलौ विंध्यवासिनः कश्यपस्य सः ॥१॥ स तं कमंडलौ क्षिप्रं कृपया क्षिप्तवान्मुनिः ॥ तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपे न्यवेशयत ॥२॥ तत्रापि न ममौ तावत्कासारे प्रापयत्स तम् ॥ एवं स सागरे मत्स्यः क्षिप्तोऽसावभ्यवर्द्धत ॥३॥ ततोऽवधीत्स तं शंखं विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ॥ अथ तं स्वकरे धृत्वा बदरीवनमभ्यगात् ॥४॥ तत्राहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयद्विभुः ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ जलांतरं विशीर्णास्तु वेदास्तान्परिमार्गथ ॥ ५ ॥

मारते हुए और अपने हाथमें धारण कर बदरीवनको जाते भये ॥ ४ ॥ और वहां सब ऋषियोंको बुलाकर भगवान् यह आज्ञा देते भये, विष्णु बोले जलके भीतर वेद निमग्न होगये है उन्हें ढूंढो ॥ ५ ॥

और शीघ्रतापूर्वक जलमेंसे निकालकर रहस्यसमेत लाओ तबतक मैं सब देवताओंसमेत प्रयागमें निवास करूंगो ॥ ६ ॥ नारदजी बोले तदनंतर तपोबल करके युक्त उन मुनियोंने मिलकर बीज और यज्ञ मन्त्रोंसहित वेदोंका उद्धार किया ॥ ७ ॥ उन ऋषियोंमेंसे जितना जिसने निकाला वह वह भाग उसी ऋषिके नामसे प्रसिद्ध होता हुआ ॥८॥ पीछे सब मुनि मिलकर प्रयागराजको

आनयध्वं त्वरायुक्ताः सरहस्याञ्जलांतरात् ॥ तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तैः सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः ॥ उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥ ७ ॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत् ॥ स स एव ऋषिर्जातस्तदाप्रभृति पार्थिव ॥ ८ ॥ अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः ॥ विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ॥ ९ ॥ लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ अयजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥ १० ॥

गये और प्राप्त हुए वेद ब्रह्मासहित विष्णुभगवान्के अर्पण किये ॥ ९ ॥ संपूर्ण वेदोंको प्राप्त करके ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए तथा देव और ऋषियोंके गणसमेत अश्वमेध यज्ञ करते हुए ॥ १० ॥

यज्ञके अंतमें देवता गंधर्व यक्ष पन्नग गुह्यक पृथ्वीमें दंडके समान गिरकर प्रार्थना करते हुए ॥ ११ ॥ देवता बोले हे देवदेव ! हे जगन्नाथ! हे प्रभो ! हमारी विज्ञप्ति श्रवण करो यह समय हमारी प्रसन्नताका है इससे तुम वरदान देउ ॥ १२ ॥ हे रमापते ! इन ब्रह्मजीने आपकी कृपासे इस स्थानमें नष्ट हुये वेद फिर पाये और हमने यज्ञके भाग प्राप्त किये ॥ १३ ॥ अब सब आपके प्रसादसे

यज्ञांते देवगंधर्वयक्षपन्नगगुह्यकाः ॥ निपत्य दंडवद्भूमौ विज्ञप्तिं चक्रुरंजसा ॥११॥ देवा ऊचुः ॥ ॥ देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणु नः प्रभो ॥ हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥१२॥ स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् ॥ यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ १३ ॥ स्थानमेतदति श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्द्धनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसादाद्भवतः सदा ॥ १४ ॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नादिविशुद्धिकृत् ॥ दत्ताक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः ॥ १५ ॥

यह स्थान पृथिवी अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यको बढानेवालो होय तथा भुक्ति और मुक्तिको देनहारो होय ॥ १४ ॥ और यह काल अर्थात महिनाभी महाफलदायक और ब्रम्हहत्या आदिका दूर करनेवाला होय और जो दान कियो जाय वह अक्षयफल करनहारो होय यही वरदान हमको दीजिये ॥ १५ ॥

श्रीविष्णुभगवान् बोले हे देवताओ जो बात तुमने कही है यही मोयभी अभीष्ट है, जो तुमने मांगो है सो ऐसाही होयगो यह ब्रम्हक्षेत्र नामसे सबको सुलभ होयगो ॥ १६ ॥ सूर्यवंशी राजा भागीरथ यहां गंगाजीको लावेंगे और इस स्थानपर सूर्यकी पुत्री कालिन्दी अर्थात यमुनाजी गंगाजीसे संगम होयगा ॥ १७ ॥ ब्रम्हासे आदिलेके तुम सब देवता मेरे साथ निवास करो और यह तीर्थ तीर्थराजके

श्रीविष्णुरुवाच ॥ ममाप्येतन्मतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ तथास्तु सुलभं त्वेतद् ब्रह्मक्षेत्रमतिप्रथम् ॥ १६ ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गंगामत्रानयिष्यति ॥ सा सूर्यकन्यया चात्र कालिंद्या योगमेष्यति ॥ १७ ॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसंतु मया सह ॥ तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥ दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाः क्रियाः ॥ अनंतफलदाः संतु मत्सान्निध्यकराः सदा ॥ १९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मकृतान्यपि ॥ दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यांतु तत्क्षणात् ॥ २० ॥

नामसे प्रसिद्ध होयगो ॥ १८ ॥ यहां किया हुआ दान तप व्रत होम जप पूजा आदि कर्म अनंतफलके देनेवाली होंयगो और मेरे पास पहुंचानेवाली होंयगी ॥ १९ ॥ अन्य जन्मोंके किये हुए ब्रह्महत्यादिक पापभी इस तीर्थके दर्शनमात्रसेही तत्क्षण नष्ट हो जांयगे ॥ २० ॥

जो मनुष्य धैर्य धारण करके मेरे समीप प्राणपरित्याग करेंगे वे मेरे शरीरमें प्रवेश करेंगे और फिर वे जन्मधारण न करेंगे ॥ २१ ॥ जो अपने पित्रीश्वरोंके निमित्त यहां श्राद्ध करेंगे उनके पितृगण मेरे स्वरूपको धारण करेंगे । और यह कालभी मनुष्योंको सदैव महापुण्यके फलको देनहारो होयगो तथा मकरके सूर्यमें जो यहां स्नान करेंगे उनके संपूर्ण पाप नष्ट हो जांयगे ॥ २३ ॥ मकरकी संक्रांतमें माघके

देहत्यागं च ये धीराः कुर्वंति मम सन्निधौ ॥ मत्तनुं प्रविशंत्येते न पुनर्जन्मिनो नराः ॥ २१ ॥
पितॄनुद्दिश्य ये श्राद्धं कुर्वंत्यत्र समायुताः ॥ तेषां पितृगणाः सर्वे यांति मत्समरूपताम् ॥ २२ ॥
कालोऽप्येष महापुण्यफलदोऽस्तु सदा नृणाम् ॥ सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनम् ॥ २३ ॥
मकरस्थे रवौ माघे प्रातःस्नानं प्रकुर्वताम् ॥ दर्शनादेव पापानि यांति सूर्याद्यथा तमः ॥ २४ ॥
सलोकत्वं समीपत्वं सारूप्यं च त्रयं क्रमात् ॥ नृणां ददाम्यहं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥ २५ ॥

महिनामें जो प्रातःकाल स्नान करें हैं उनके दर्शनमात्रसेही पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्यके प्रकाशसे अंधेरेका नाश हो जाता है ॥२४॥ माघमें मकरकी संक्रान्तीमें स्नान करनेवालोंको मैं सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य इन तीन प्रकारकी मुक्ति क्रमसे देताहूं ॥ २५ ॥

हे मुनिवरो ! तुम मेरे वचन सुनो मैं सर्वज्ञरूपसे बदरीवनमें सदैव निवास करूंहूं ॥ २६ ॥ जो फल और जगह सौ वर्षमें मिले वह तुमको वहां एक दिनमेंही प्राप्त होयगो ॥ २७ ॥ जो उत्तम मनुष्य उस स्थानके दर्शन करें वे जीवन्मुक्त होय हैं उनमें पापको लेशमात्रभी नहीं रहे है ॥२८॥ सूतजी बोले देवनके देव भगवान् देवतानसे ऐसे कहके ब्रह्माजीसहित वहीं अन्तर्धान हो गये, और इन्द्रादिक देवताभी

यूयं मुनीश्वराः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥ बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥ २६ ॥ अन्यत्र च शतैर्वर्षैस्तपसा प्राप्यते फलम् ॥ तत्र तद्दिवसैकेन भवद्भिः प्राप्यते सदा ॥ २७ ॥ स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वंति नरोत्तमाः ॥ जीवन्मुक्ताः सदा तेषु पापं नैवावतिष्ठते ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवांतर्द्धानमागात्सवेधाः ॥ देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तत्र तिष्ठँश्चांतर्द्धानं प्रापुरिंद्रादयस्ते ॥ २९ ॥ इमां कथां यः शृणुयान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचेताः ॥ सतीर्थराजं बदरीवनं यद्गत्वा फलं तत्समवाप्नुयाच्च ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अंशोंसे वहां रहकर अंतर्धान हो गये ॥ २९ ॥ जो मनुष्य शुद्ध चित्तसे इस पुनीत कथाको सुनते सुनाते हैं उनको वही फल प्राप्त होय है जो प्रयागराज और बदरीवनमें जानेसे मिलता है ॥ ३० ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पृथु बोले हे मुने ! तुमने कार्तिक और माघ मासोंका महाफल वर्णन किया है अब आप हमसे उत महिनोंके स्नानकी विधि और नियम कहिये ॥ १ ॥ और उनके उद्यापनकी विधिभी आप यथावत कहनेको समर्थ हैं ॥ २ ॥ नारदजी बोले हे राजा ! तुम विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हो तुमसे कोई बात छिपी नहीं है तथापि मैं नियमोंका वर्णन करताहूं आप सुनिये ॥ ३ ॥ आश्विन मासमें

पृथुरुवाच ॥ महत्फलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः ॥ तयोः स्नानविधिं सम्यङ् नियमानपि नो वद ॥ १ ॥ उद्यापनविधिं चैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ त्वं विष्णोरंशसम्भूतो नाज्ञातं विद्यते तव ॥ तथापि वदतः सम्यङ् नियमानपि वै शृणु ॥ ३ ॥ आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् ॥ कार्तिकस्य व्रतारंभं तस्यां कुर्यादतंद्रितः ॥ ४ ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती ॥ प्रागुदीचीं व्रजेद्ग्रामाद्बहिः सोदकभाजनः ॥ ५ ॥

शुक्लपक्षकी एकादशीसे सावधान होकर कार्तिकके व्रतोंका आरंभ करे ॥ ४ ॥ व्रत करनेवाला प्रहर रात्र रहे प्रतिदिन उठे और जलका पात्र लेकर ग्रामसे बाहर उत्तम दिशाको जाय ॥ ५ ॥

दिनमें सायंकालके समय जनेऊको कानपर चढाकर उत्तरकी ओर मुख करके भूमिपर तृण बिछावे और शिरको कपडेसे ढकले ॥ ६ ॥ मुखको यत्नपूर्वक बन्द करके थूंकना और श्वास लेना बंद करके मलमूत्रका त्याग करे जो रात्रि हो तो दक्षिणको मुख करे ॥ ७ ॥ शिश्नेन्द्रियको हाथसे पकड मिट्टी लगा लगाकर धोवे तथा दुर्गंध और आलेपके दूर करनेवाले शौचको सावधानीसे करे ॥ ८ ॥ शिश्नमें

दिवा संध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ॥ अन्तर्द्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ ६ ॥ वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥ कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥७॥ गृहीतशिश्नश्चो-त्थाय मृद्भिरभ्युक्षितैर्जलैः ॥ गंधलेपक्षयकरं शौच कुर्यादतंद्रितः ॥ ८ ॥ एका लिंगे गुदे तिस्र उभयोर्मृ-द्द्वयं स्मृतम् ॥ पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ ९ ॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचा-रिणः ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ यद्दिवा विहितं शौचं तदर्द्धं निशि कीर्तितम् ॥ १० ॥

एकबार गुदामें तीन बार फिर दोनोंमें दो बार मृत्तिका लगावे फिर पांचबार अपानमें दस बार एक हाथमें फिर दोनों हाथोंमें सात बार मृत्तिका लगाकर धोवे ॥ ९ ॥ इस तरह गृहस्थी करे, ब्रह्मचारी इससे दूना करे, वानप्रस्थी तिगुना और सन्यासियोंको चौगुना करना उचित है जो शौच दिनके लिये कहा है उससे आधा रात्रिमें करे ॥ १० ॥

इससेभी आधा रोगी करे और इससेभी आधा परदेश जानेवाला करे, जो शौचादि कर्म नहीं करते हैं उनकी संपूर्ण क्रिया निष्फल हो जाती है ॥ ११ ॥ जो मुख शुद्ध नहीं करते हैं उनको मंत्र फलदायक नहीं होते और फिर यत्नपूर्वक दांत और जीभको शुद्ध करना उचित है ॥ १२ ॥ दांतन लातेसमय वृक्षसे कहे कि हे वनसपते ! हमको आयु बल यश तेज संतान द्रव्य वेदपाठकी शक्ति और बुद्धि

तदर्द्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्द्धमध्वनि ॥ शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः ॥ ११ ॥
मुखशुद्धिविहीनस्य न मंत्राः फलदाः स्मृताः ॥ दंतजिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
आयुर्बलं यशो वर्च्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ १३ ॥ इति
मंत्रं समुच्चार्य द्वादशांगुलमानतः ॥ समिधा क्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषणं विना ॥ १४ ॥ प्रतिपद्दर्शनव-
मीषष्ठी चार्कदिने तथा ॥ चंद्रसूर्योपरागे च न कुर्याद्दंतधावनम् ॥ १५ ॥

दे ॥ १३ ॥ इस मंत्रको पढकर गूलर आदि किसी दूधके वृक्षकी बारह अंगुल लंबी दांतन लावे । क्षयातिथि और व्रतके दिन ऐसा न करे ॥ १४ ॥ प्रतिपदा अमावस नवमी छट रविवार तथा चन्द्र और सूर्यग्रहणके दिन दंतधावन न करे ॥ १५ ॥

कटेरी कपास संभालू पीपल वड अरंड और गंधहीन वृक्षोंकी दांतन न करे ॥१६॥ तदनंतर विष्णु और शिवके मंदिरमें प्रसन्नतापूर्वक जाय और भक्तिपूर्वक पुष्प गंध तांबूल लेजाय ॥१७॥ वहां भगवान्के पाद्यादि अलग अलग उपचारोंको करे फिर स्तुति करके नमस्कार करे और भजन गावै ॥ १८ ॥ फिर ताल विणा मृदंगादि ध्वनिसे युक्त पुष्प और गंधद्वारा नाचने और गानेवालोंका अर्चन करे ॥१९॥ जब देवालय

कंटकीवृक्षकार्पासीनिर्गुंडीब्रह्मवृक्षकान् ॥ वटैरंडविगंधाद्यान्वर्जयेद्दंतधावने ॥ १६ ॥ ततो विष्णोः शिवस्यापि गृहं गच्छेत्प्रसन्नधीः ॥ पुष्पं गंधान्सतांबूलान्गृहीत्वा भक्तितत्परः ॥ १७ ॥ तत्र देवस्य पाद्यादीनुपचारान्पृथक्पृथक् ॥ कृत्वा स्तुत्वा पुनर्नत्वा कुर्याद्गीतादिमंगलम् ॥ १८ ॥ तालवेणुमृदं-गादिध्वनियुक्तान्सनर्तकान् ॥ पुष्पैर्गंधैः सतांबूलैर्गायकानपि चार्चयेत् ॥ १९ ॥ देवालये गानपरा यतस्ते विष्णुमूर्त्तयः ॥ तपांसि यज्ञदानानि कृतादिषु जगद्गुरोः ॥ २० ॥ तुष्टिदानि कलौ यस्माद्भक्त्या गानं प्रशस्यते ॥ क्व त्वं वसासि देवेश मया पृष्टस्तु पार्थिव ॥ २१ ॥

भजनकीर्तनमें तत्पर होय जांय हैं तब वे विष्णुके स्वरूप होंय हैं जैसे सतयुगादिमें तप यज्ञ दान आदि तुष्टिके देनेहारे हैं वैसेही कली-युगमें भक्तिपूर्वक भजनकीर्तन तुष्टिदायक हैं । हे पार्थिव मैंने भगवान्से पूछा कि अब कहां निवास करो हो ॥ २० ॥ २१ ॥

तब भगवान् बोले हे नारद ! मैं वैकुंठ अथवा योगियोंके हृदयमें नहीं रहूं हूं किंतु मेरे भक्त जहां भजन कीर्तन करें मैं वहीं रहूं हूं ॥ २२ ॥ जो गंध पुष्पादिसे मेरे भक्तोंका पूजन करें हैं मैं उन्हींसे इतना प्रसन्न होता हूं जितना मेरे पूजनसे नहीं होऊं ॥ २३ ॥ जो मूढ नर मेरी पुराणकथा और मेरे भक्तोंका गान सुनकर मेरी निन्दा करे है वे मेरे दोषी हैं ॥ २४ ॥ सिरस, धतूरा, कटेरी,

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ॥ मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ २२॥ तेषां पूजादिकं गंधपुष्पाद्यैः क्रियते नरैः ॥ तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मत्प्रपूजनात् ॥ २३ ॥ मत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम् ॥ निंदंति ये नरा मूढास्ते मे द्वेष्या भवंति हि ॥ २४ ॥ शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः ॥ अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः ॥ २५ ॥ जपाकुंदशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः ॥ केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शंकरस्तथा ॥ २६ ॥

मल्लिका सेमर, आक, कनेर इनके फूल तथा अक्षतोंसे विष्णुकी पूजा करना उचित नहीं ॥ २५ ॥ जपा, कुंद, सिरस, चमेली, मालती, केतकी आदिके फूलोंसे शिवकी पूजा करना उचित नहीं ॥ २६ ॥

तुलसीदलसे गणेशजीकी, दूबसे दुर्गाकी, अगस्तके फूलसे सूर्यकी पूजा लक्ष्मीके चाहनेवालोंको करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥ जिन देवताओंको लिये जो उत्तम विधि कही गई हैं उससेही उनकी पूजा करके भगवान्से क्षमा प्रार्थना करे ॥ २८ ॥ कि हे सुरेश्वर! हे देव! मैं मंत्रहीन, भक्तिहीन और क्रियाहीन हूं ऐसे जो मैंने आपको पूजन कियो वह परिपूर्ण होय ॥ २९ ॥ फिर प्रदक्षिणा करके दंडवत करे

गणेशं तुलसीपत्रैर्न दुर्गां चैव दूर्वया ॥ मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥ २७ ॥ येभ्यो यानि प्रशस्तानि पूजायां सर्वदैव तु ॥ एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत् ॥ २८ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २९ ॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा दंडवत्प्रणिपत्य च ॥ पुनः क्षमाप्य देवेशं गायनाद्यं समापयेत् ॥ ३० ॥ विष्णोः शिवस्यापि च पूजनं ये कुर्वंति सम्यङ्ग् निशि कार्तिकस्य ॥ निर्धूतपापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयांति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

फिर क्षमाप्रार्थना करके गायनादि समाप्त करे ॥ ३० ॥ जो कार्तिककी रात्रिमें विधिपूर्वक विष्णु और शिवका पूजन करते हैं वे अपने पूर्व पुरुषोंसहित निष्पाप होकर वैकुंठको चले जाते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकान्विते पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नारदजी बोले दो घडी रात रह जाय तब उठकर तिल, कुशा, अक्षत, फूल, धूप, दीप आदि लेकर पवित्र होकर किसी नदी तलाव कुआआदि जलाशयपर जाय ॥ १ ॥ मनुष्यकी बनाई हुई नहर आदि तथा देवताओंकी बनाई हुई नदियोंमें वा संगममें स्नानका क्रमसे दसगुना फल है तीर्थमें स्नान करनेसे उसका दुगुना फल है ॥ २ ॥ विष्णुका स्मरण करके स्नानका संकल्प करे और फिर तीर्थ तथा

नारद उवाच ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् ॥ तिलदर्भाक्षतैः पुष्पैर्गंधाद्यैः सहितः शुचिः ॥ १ ॥ मानुषे देवखाते च नद्यामथ च संगमे ॥ क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥ २ ॥ विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात्संकल्पं सवनस्य तु ॥ तीर्थादिदेवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ ३ ॥ अर्घ्यमंत्रः ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

देवताआदिको क्रमसे अर्घ्यादि देवे ॥ ३ ॥ अर्घ्यका मंत्र यह है । कमलनाथ भगवानको नमस्कार है जलशायी जो भगवान् हैं तिनके अर्थ नमस्कार है । हे ऋषीकेश ! आपको नमस्कार है इस मेरे अर्घ्यको ग्रहण करिये, आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥

वैकुंठमें अथवा प्रयागमें अथवा बदरिकाश्रममें जहां विष्णुभगवान् गये वहांही तीन प्रकारसे पद स्थापित किया ॥ ५ ॥ इससे उन्ही मुनि वेद और यज्ञोंकरके सहित जहां तीन प्रकारसे विष्णुने स्थापित किया है वहां सब देवता हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! हे देवेश ! हे दामोदर ! मैं आपकी प्रसन्नताके निमित्त विधिपूर्वक प्रातःकाल कार्तिकमासमें स्नान करूंगो ॥ ७ ॥ देवदेवेश भगवान्को

वैकुंठे च प्रयागे च तथा बदरिकाश्रमे ॥ यतो विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा च निदधे पदम् ॥ ५ ॥ अतो देवा अवंतु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ॥ तैरेव सहितः सम्यङ् मुनिवेदमखान्वितैः ॥ ६ ॥ कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर यथाविधि ॥ ७ ॥ ध्यात्वा नत्वा च देवेशं जलेऽस्मिन्स्नातुमुद्यतः ॥ तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥ ८ ॥ अर्घ्यमंत्रः ॥ व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ ९ ॥

ध्यान करके नमस्कार करके मैं इस जलमें स्नान करनेको उद्यत हूं. हे दामोदर ! आपके अनुग्रहसे मेरे सब पाप दूर होंय ॥८॥ अर्घ्यमंत्र । हे हरे ! कार्तिकमासमें व्रतधारण करके जो विधिपूर्वक मैं स्नान करूं सो मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप राधासहित अंगिकार कीजिये ॥ ९ ॥

हे राक्षसपतिके नाश करनहारे श्रीकृष्ण ! पापके नाश करनेवाले इस कार्तिकमासमें आन्हिककर्मद्वारा मेरे द्वारा दिये हुए इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये ॥ १० ॥ भागीरथी, विष्णु, शिव, सूर्यआदि देवताओंको स्मरण करके जलमें प्रवेश करे और नाभिपर्यंत जलमें घूसकर विधिपूर्वक स्नान करे ॥ ११ ॥ गृहस्थी तिल और आमलेका चूर्ण मर्दन करके स्नान करे, विधवा स्त्री और सन्यासी तुलसीकी जडकी

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ १० ॥ स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ॥ नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥ ११ ॥ तिलामलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत् ॥ विधवास्त्रीयतीनां तु तुलसीमूलमृत्स्नया ॥ १२ ॥ सप्तमी-दर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च ॥ त्रयोदश्यां न च स्नायाद्धात्रीफलतिलैः सह ॥ १३ ॥ आदौ कुर्यान्म-लस्नानं मंत्रस्नानं ततः परम् ॥ स्त्रीशूद्राणां न वेदोक्तैर्मंत्रैस्तेषां पुराणजैः ॥ १४ ॥

मिट्टी लगाकर स्नान करे ॥ १२ ॥ परंतु सप्तमी, अमावास्या, नवमी, द्वितीया, दसमी और त्रयोदशी इन तिथियोंमें आमला और तिल न लगावे ॥ १३ ॥ प्रथम मलका स्नान करे फिर मंत्रद्वारा स्नान करे, स्त्री और शूद्रोंको पुराणमंत्रोंसे स्नान करना कहा है, वेदमंत्रोंसे नहीं ॥ १४ ॥

स्नानमंत्र—जो भक्तभावन प्रभु देवताओंके कार्यके निमित्त तीन प्रकारका रूप धारण करते हुए वे सब पापोंके नाश करनेहारे विष्णु भगवान् कृपा करके मुझे पवित्र करें ॥ १५ ॥ विष्णुके आज्ञासे इन्द्रसहित सब देवता कार्तिकके व्रत करनेहारोंकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ बीजरहस्य और यज्ञसहित सब वेदमंत्र कश्यपादि सब मुनि और सब देवता मुझे पवित्र करें ॥ १७ ॥ गंगादि सब नदी, सब तीर्थ,

स्नानमंत्रः ॥ त्रिधाभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तभावनः ॥ स विष्णुसर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्र माम् ॥१५॥ विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारकान् ॥ रक्षंति देवास्ते सर्वे मां पुनंतु सवासवाः ॥ १६ ॥ वेदमंत्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः ॥ कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनंतु सदेवताः ॥ १७ ॥ गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ ससप्तसागराः सर्वे मां पुनंतु जलाशयाः ॥ १८ ॥ पतिव्रता-स्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः ॥ ओषध्यः पर्वताश्चापि मां पुनंतु त्रिलोकजाः ॥ १९ ॥

शोणादिनद, सप्तसागरादि जलाशय सब मुझे पवित्र करें ॥ १८ ॥ अदिति आदि सब पतिव्रता यक्ष सिद्ध सर्प त्रिलोकीकी औषध और हिमादि पर्वत सब मुझे पवित्र करें ॥ १९ ॥

व्रती मनुष्य इसप्रकार मंत्रोंद्वारा स्नान करके हाथमें पवित्री धारण कर देव ऋषि मनुष्य और पितरोंका यथाविधि तर्पण करे ॥ २० ॥ कार्तिकके महिनेमें पितरोंके तर्पणमें जितने तिल होते हैं उतनेही वर्षपर्यंत वे पितर स्वर्गमें वास करें हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर जलमेंसे निकलकर पवित्र वस्त्रोंको धारण कर प्रातःकालमें कहे हुए कर्मोंको समाप्तकर फिर हरिभगवान्का अर्चन करे ॥ २२ ॥ तीर्थ और

एभिर्मंत्रैर्व्रती स्नात्वा हस्तन्यस्तपवित्रकः ॥ देवर्षीन्मानवान्पितॄंस्तर्पयेच्च यथाविधि ॥ २० ॥
यावंतः कार्तिके मासि वर्तन्ते पितृतर्पणे ॥ तिलास्तत्संख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवासिनः ॥ २१ ॥
ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिवस्त्रावृतो व्रती ॥ प्रातःकालोदितं कर्म समाप्याचर्यो हरिः पुनः ॥ २२ ॥
तीर्थानि देवान्संस्मृत्य पुनरर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ गंधपुष्पफलैर्युक्तं भक्त्या तत्परमानसः ॥ २३ ॥ अर्घ्य-
मंत्रः ॥ व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥२४॥

देवताओंका स्मरण करके भक्तिपूर्वक हरिभगवान्में ध्यान लगाकर गंध पुष्प और फलोंसे युक्त अर्घ्य प्रदान करे ॥ २३ ॥ अर्घ्यमंत्र । मैं व्रतधारण करके विधिपूर्वक कार्तिकमासमें स्नान करूं सो मेरे दिये हुए अर्घ्यको राधिकासहित ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥

तत्र वेदपाठी ब्राह्मणोंका भक्तिपूर्वक पूजन करे गंध पुष्प और तांबूल चढावे फिर बार बार नमस्कार करे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंके दक्षिण चरणमें तीर्थ, मुखमें देवता और संपूर्ण अंगोंमें देवता निवास करते हैं अतः उनकी पूजा करनेसेही मेरी पूजा होय है ॥ २६ ॥ पृथ्वीमें ब्राह्मण अव्यक्तरूप विष्णुभगवान्के स्वरूप हैं जो कोई अपने कल्याणकी इच्छा करे उसे उचित है कि यह कदापि इनका अपमान न करे न इनसे

ततश्च ब्राह्मणान्भक्त्या पूजयेद्वेदपारगान् ॥ गंधैः पुष्पैः सतांबूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ २५ ॥ तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखमाश्रिताः ॥ सर्वांगेष्वाश्रिता देवाः पूजितोऽस्मि तदर्चया ॥ २६ ॥ अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि ॥ नावमान्या नो विरोध्याः कदापि शुभमिच्छता ॥ २७ ॥ ततो हरिप्रियां देवीं तुलसीमर्चयेद्व्रती ॥ प्रदक्षिणां नमस्कारान्कुर्यादेकाग्रमानसः ॥ २८ ॥ देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः ॥ नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥ २९ ॥

विरोध करे ॥ २७ ॥ फिर एकाग्र चित्तसे हरिकी प्यारी तुलसीजीकी पूजा करे परिक्रमादेकर नमस्कार करे ॥ २८ ॥ और कहे कि देवताओंने प्रथम तुम्हें निर्मित की है, मुनियोंने पूजी है सो हे हरिकी प्यारी तुलसी ! तुमको बार बार नमस्कार है, मेरे पापको हरण करो ॥ २९ ॥

तब स्थिर चित्तसे पुराणोक्त हरिकथाओंका श्रवण करे फिर भक्तिपूर्वक उन ब्राह्मणोंका पूजन करे ॥ ३० ॥ ऐसे जो कोई भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त सब विधियोंको करता है वह नारायणकी सालोक्यताको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रोग और पातकोंका नाश करनेवाला उत्तम बुद्धिका देनेवाला पुत्र और धनादिका साधन करनेवाला मुक्तिके दाता इन विष्णुभगवान्के प्यारे कार्तिकके व्रतोंके सिवाय और

ततो हरिकथां श्रुत्वा पौराणीं स्थिरमानसः ॥ पुनस्तान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेद्भक्तिमान्व्रती ॥ ३० ॥
एवं सर्वविधिं सम्यक्पूर्वोक्तं भक्तिमान्नरः ॥ करोति यः स लभते नारायणसलोकताम् ॥ ३१ ॥ रोगापहं पातकनाशकृत्परं सुबुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् ॥ मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति शोभनम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥
कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः ॥ ताञ्छृणुष्व महाराज कथ्यमानान्समासतः ॥ १ ॥

दूसरे व्रत उत्तम नहीं हैं ॥ ३२ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते पद्मपुराणोक्त कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकान्विते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारदजी बोले हे महाराज, कार्तिकके व्रत धारण करनेवाले मनुष्योंके नियम संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

सब प्रकारके आमिष, मांस, शहद, राई. सौवीरक तथा नशा करनेवाली वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहियें ॥ २ ॥ तथा कार्तिकके व्रत करनेवालेको पराया अन्न, परद्रोह, विदेशागमन विना तीर्थके स्थानमें रहना छोड देना चाहिये ॥ ३ ॥ तथा देवता वेद ब्राह्मण गुरु गौ व्रती स्त्री राजा और बडोंकी निन्दा त्याग देवे ॥ ४ ॥ दाल, तिल, तेल खरीदा हुआ पक्वान्न, भाव और शब्दसे दूषित वस्तुओंका

सर्वामिषाणि मांसं च क्षौद्रं सौवीरकं तथा ॥ राजिकोन्मादकं चापि नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥ २ ॥ परान्नं च परद्रोहं परदेशागमं तथा ॥ तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ३ ॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्ज्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ४ ॥ द्विदलं च तिलं तैलं पक्वान्नं मूल्यदूषितम् ॥ भावदुष्टं शब्ददुष्टं वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ५ ॥ प्राण्यंगमामिषं चूर्णं फलं जंबीरमामिषम् ॥ धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥ ६ ॥ अजागोमाहिषीक्षीरादन्यद्दुग्धाद्यमामिषम् ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥ ७ ॥

परित्याग कर दे ॥ ५ ॥ जीवधारीका मांस, चूना, जंभीरीका फल मसूर बासी अन्न न खाय ॥ ६ ॥ बकरी भैंस गौके दूधके सिवाय अन्य दूध तथा ब्राह्मणोंसे खरीदा हुआ कोई रस पृथ्वीसे पैदा हुआ नमक येभी कार्तिकके व्रत रखनेवाला छोड देवे ॥ ७ ॥

तांबेके पात्रमें रक्खा हुआ पंचगव्य, चोहडका जल और अपने आप पकाया हुआ अन्न मांसके तुल्य कहा है ॥ ८ ॥ तथा कार्तिकके व्रत करनेहारा ब्रह्मचर्यसे रहे, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तोपर खाय और चौथे पहर भोजन करे ॥ ९ ॥ नरकचौदसको तेलका मर्दन करे इस तिथिको छोडकर कार्तिक स्नान करनेवाला तेल न लगावे ॥ १० ॥ घीया, बेंगन, कुम्हडा, कटेरी तरबूजा और कैंथ ये सब कार्तिकके

ताम्रस्थितं पंचगव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥ ८ ॥
ब्रह्मचर्यमधःशय्या पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ चतुर्थयामे भुंजानः कुर्यादेवं सदा व्रती ॥ ९ ॥ नरकस्य
चतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं च कारयेत् ॥ अन्यत्र कार्तिकस्नायी तैलाभ्यंगं विवर्जयेत् ॥ १० ॥ अलाबुं
चापि वृंताकं कूष्मांडं बृहतीफलम् ॥ कलिंगं च कपित्थं च वर्जयेद्वैष्णवो व्रती ॥ ११ ॥ रजस्वलां
त्यजेन्म्लेच्छपतितव्रतकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेत्कार्तिकव्रती ॥ १२ ॥

व्रत करनेवाला छोड देवे ॥ ११ ॥ कार्तिकके व्रत करनेवालेको उचित है कि रजस्वला स्त्रीको त्याग देवे म्लेच्छ पतित व्रत करनेवाले शिवद्रोही और वेदसे विपरीत चलनेवालोंसे संभाषण न करे ॥ १२ ॥

तथा ऊपर कहे हुए मनुष्य और कौओंसे देखे हुए अन्नको सूतकके अन्नको तथा दो बार पकाये हुए और दग्ध अन्नको न खाय ॥ १३ ॥ व्रती मनुष्य अन्य सब व्रतोंमेंभी ऊपरकी बातोंको छोड देवे तथा विष्णुभगवानकी प्रसन्नताके लिये सामर्थभर चांद्रयणादि व्रतोंको करे ॥ १४ ॥ क्रमसे काशीफल कटेरी नईमूली नारियल तर्बूजा आंवला घीया पर्वल बेर बैंगन लवली और तुलसी इनके

एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत् ॥ द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥ १३ ॥ एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि ॥ कृच्छ्रादींश्च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या विष्णुतुष्टये ॥ १४ ॥ क्रमात्कूष्मांडबृहतीतरुणीमूलकं तथा ॥ श्रीफलं च कलिंगं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ १५ ॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बदरीफलम् ॥ चर्मवृंताकलवलीशाकं तुलसिजं तथा ॥ १६ ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु ॥ धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा व्रती ॥ १७ ॥ एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किंचिद्विष्णुव्रतपरायणः ॥ तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदा व्रती ॥ १८ ॥

शाकको प्रतिपदादि तिथियोंमें त्याग देवे ऐसे व्रत धारण करनेवाला सदा रविवारके दिन आंवलेका सेवन न करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ इन वस्तुओंके सिवाय व्रती मनुष्य जिन वस्तुओंका त्याग करे उनमेंसे पाहिले ब्राह्मणको भेट करके फिर आप सेवन करे ॥ १८ ॥

ऐसेही व्रत करनेवाला मनुष्य माघमेंभी उक्त नियमोंपर चले और प्रबोधिनी एकादशीमें कहे हुए जागरणादि कृत्य करे ॥ १९ ॥ यथोक्त रीतिसे कार्तिकके व्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर यमके दूत ऐसे भाग जाते हैं जैसे सिंहसे पीडित हाथी भाग जाय हैं ॥ २० ॥ सौ यज्ञोंके करनेवालेसे विष्णुके व्रत करनेवाला एक मनुष्य श्रेष्ठ है क्योंकि यह करनेवालेको स्वर्गकी प्राप्ती होती है और कार्तिकके व्रत

एममेव हि माघे च कुर्य्याच्च नियमान्व्रती ॥ हरेश्च जागरं तत्र प्रबोधोक्तं च कारयेत् ॥ १९ ॥ यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्तिकव्रातिनं नरम् ॥ यमदूताः पलायंते गजाः सिंहार्दिता इव ॥ २० ॥ वरं विष्णुव्रती ह्येको न यज्ञशतयाजकः ॥ यज्ञकृत्प्राप्नुयात्स्वर्गं वैकुंठं कार्तिकव्रती ॥ २१ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नीह यानि क्षेत्राणि भूतले ॥ वसंति तानि तद्देहे कार्तिकव्रतकारिणः ॥ २२ ॥ कार्तिकव्रातिनः पुंसो विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ॥ रक्षां कुर्वंति शक्राद्या राजानं किंकरा यथा ॥ २३ ॥

करनेवालेको वैकुंठ मिलता है ॥ २१ ॥ भूतलमें जितने भक्ति और मुक्ति देनेवाले क्षेत्र हैं वे सब कार्तिक व्रत धारण करनेवालेके देहमें वास करते हैं ॥ २२ ॥ विष्णुभगवानकी प्रेरणासे इन्द्रादिक सब देवता कार्तिकके व्रत करनेवाले मनुष्यकी ऐसे रक्षा करते हैं जैसे सेवक अपने राजाकी ॥ २३ ॥

विष्णुके व्रत करनेवाला मनुष्य जिस स्थानपर आदरपूर्वक रहता है वहां ग्रह भूत पिशाच आदि कोईभी नहीं रह सकते हैं ॥ २४ ॥ यथारीतिसे कार्तिकके व्रत करनेवाले मनुष्योंके पुण्योंको चार मुखवाला ब्रह्माभी कहनेमें असमर्थ है ॥ २५ ॥ विष्णुका व्रत संपूर्ण पापोंके नाश करनेहारा है उत्तम पुत्र नाती धनधान्यका बढानेवाला है इन व्रतोंको जो नियमपूर्वक करते हैं उनको अन्य तीर्थोंके सेवनकी क्या

विष्णुव्रतकरो नित्यं यत्र तिष्ठति पूजितः ॥ ग्रहभूतपिशाचाद्या नैव तिष्ठंति तत्र वै ॥ २४ ॥ कार्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः ॥ न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापि हि चतुर्मुखः ॥ २५ ॥ विष्णुव्रतं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यविवृद्धिकारि ॥ ऊर्ज्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥ २६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ अथोर्ज्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप ॥ तं शृणुष्व मया ख्यातं सविधानं समासतः ॥ १ ॥

अवश्यकता है ॥ २६ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते पद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकान्विते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नारदजी बोले हे राजन् ! अब मैं कार्तिकके व्रतोंका उद्यापन संक्षेपसे कहताहूं सो ध्यानपूर्वक सुनो ॥ १ ॥

व्रतके परिपूर्ण होनेके फलके निमित्त और विष्णुभगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कार्तिककी शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीके दिन उद्यापन करे ॥ २ ॥ तुलसीके ऊपर शुभ मंडप बनावे तोरण बन्दनवार बांधे चार द्वार बनावे उनपर फूल और चमरसे सुशोभित करे ॥ ३ ॥ और उसके चारों द्वारपर मृत्तिकाके बनेहुए पुण्यशील सुशील जय और विजय इन चारों द्वारपालोंका पूजन करे ॥ ४ ॥ और तुलसीकी

ऊर्ज्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ व्रतपूर्तिफलार्थं च विष्णुप्रीत्यर्थमेव च ॥ २ ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मंडपिकां शुभाम् ॥ सतोरणां चतुर्द्वारां पुष्पचामरशोभिताम् ॥ ३ ॥ द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृन्मयान्पृथक् ॥ पुण्यशीलं सुशीलं च जयं विजयमेव च ॥ ४ ॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥ चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक्छोभाढ्यं समलंकृतम् ॥ ५ ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पंचरत्नसमन्वितम् ॥ महाफलेन संयुक्तं शुभं तत्र निधाय च ॥ ६ ॥

जडके पास चार रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्र चक्र बनावे ॥ ५ ॥ उसके ऊपर पंचरत्न करके युक्त और उसके ऊपर नारियल रखकर एक सुंदर कलश स्थापित करे ॥ ६ ॥

फिर वहां शंख चक्र गदा आदि शस्त्रों सुशोभित पीतांबरसेयुक्त लक्ष्मीसहित विष्णुभगवानकी स्थापना करके पूजन करे ॥ ७ ॥ व्रत धारण करनेवाला उस मंडलमें इन्द्रादि लोकपालोंका पूजन करे द्वादशीके दिन भगवान् उठे और त्रयोदशीको देवताओंने उनके दर्शन किये और चतुर्दशीको पूजन हुआ इस कारणसे यह चतुर्दशी तिथिके दिन भक्तिपूर्वक शांत भाव और सावधानतासे उपवास करे ॥ ८ ॥ ९ ॥

पूजयेत्तत्र देवेशं शंखचक्रगदाधरम् ॥ कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधिकन्यया ॥ ७ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मंडले पूजयेद्व्रती ॥ द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां पुनः सुरैः ॥ ८ ॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथावसौ ॥ तस्यामुपवसेद्भक्त्या शांतः प्रयतमानसः ॥ ९ ॥ पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ १० ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ ततः प्रभाते विमले कुर्यान्नित्यक्रियां नरः ॥ ११ ॥

गुरुकी आज्ञा प्राप्त करके देवदेवेश भगवानकी सुवर्णमयी प्रतिमाका पूजन षोडशोपचारसे करे और अनेक प्रकारके भोग भगवानके अर्पण करे ॥ १० ॥ रात्रिमें जागरण करे और भजन कीर्तन करता रहे प्रातःकाल उठकर नित्यनैमित्तिक कर्म करे ॥ ११ ॥

पश्चात् हवन करके ब्राह्मणोंको यथेच्छ भोजन करावे यथाशक्ति दक्षिणा देवे परंतु अपनी धनशक्तिका उल्लंघन न करे ॥ १२ ॥ ऐसे जो कोई या वैकुंठ चतुर्दशीके दिन उपवास करे वह याहीके फलसे वैकुंठधाम पावे ॥ १३ ॥ इस वैकुंठचतुर्दशीके माहात्म्यको देवता और शेषजीभी सौ वर्षमें कहनेको समर्थ नहीं हैं ॥१४॥ जो भगवान् चक्रपाणीके जागरणमें भक्तिपूर्वक गायन करें हैं वे सौ जन्मके किये हुए

होमं कुर्यात्ततो विप्रान्संतर्प्य प्रयतात्मवान् ॥ शक्त्यातु दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १२ ॥ एवं येन कृता राजन्वैकुंठाख्या चतुर्दशी ॥ यस्यामुपोषणेनैव वैकुंठं प्राप्नुयान्नरः ॥ १३ ॥ वैकुंठाख्यचतुर्दश्या माहात्म्यं नैव शक्यते ॥ वक्तुं वर्षशतैर्देवैः शेषेणापि विशेषतः ॥ १४ गानं कुर्वंति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः ॥ जन्मांतरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ॥ १५ ॥ नारायणाजिरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम् ॥ गोसहस्रं च ददतां यत्फलं समुदाहृतम् ॥ १६ ॥

पापोंसे मुक्त होय जांय हैं ॥ १५ ॥ जो भगवानके मंदिरके आंगनमें गायन और नृत्य करें हैं उनको वही फल मिले है जो सहस्र गौओंके दाताको मिले है ॥ १६ ॥

जो वासुदेव भगवान्के सन्मुख भजन कीर्तन करे है नृत्य करे है और अनेक प्रकारके कुतूहल करे है और जागरण करे है ॥ १७ ॥ और विष्णुभगवानकी लीलाओंका पाठ करता हुआ वैष्णवोंके मनको आनन्द देता है उसके फलमें विष्णु उसे सालोक्य मुक्ति देते हैं ॥१८॥ जो मुखसे बाजा बजाता है और किसी प्रकारका वृथा प्रलाप नहीं करता है इन भावोंसे जो मनुष्य भगवान्का जागरण करता है

गीतनृत्यादिकं कुर्वन्दर्शयन्कौतुकानि च ॥ पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ यो जागरेद्धरेः ॥ १७ ॥ पठन्विष्णुचरित्राणि यो रंजयति वैष्णवान् ॥ तस्य पुण्यफलं विष्णुस्सालोक्यं च प्रदास्यति ॥ १८ ॥ मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्च वर्जयेत् ॥ भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम् ॥ दिने दिने तस्य पुण्यं कोटितीर्थसमं स्मृतम् ॥ १९ ॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या च निमंत्रयेत् ॥ २० ॥ वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपो भवत्ततः ॥ अस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम् ॥ २१ ॥

उसका पुण्य दिन दिन कोट तीर्थके समान होता है ॥१९॥ तदनंतर पूर्णमासीके दिन जो स्त्रीसहित तीस अथवा एक ब्राह्मणको निमंत्रण दें ॥२०॥ जिससे विष्णुभगवान् वर देके मत्स्यरूप हुए अतः इस तिथिमें दान हवन और जप करनेसे अक्षय फल मिलता है ॥ २१ ॥

तदनंतर उन ब्राह्मणोंको खीर आदि अन्नका भोजन करावे तथा अतो देवा इन दो ऋचाओंसे तिल और खीरका हवन करे ॥ २२ ॥ देवदेव तथा अलग अलग सब देवताओंकी प्रसन्नताके निमित्त यथाशक्ति दक्षिणा दे और नमस्कार करे ॥ २३ ॥ फिर भगवान् और सब देवताओं तथा तुलसीका पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे ॥ २४ ॥ फिर व्रतका उपदेश करनेवाले गुरुको सपत्नीक वस्त्र

अतस्तान्भोजयेद्विप्रान्पायसान्नादिना व्रती ॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ २२ ॥ प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक्पृथक् ॥ दक्षिणां च यथाशक्ति प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान् ॥ २३ ॥ पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥ ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती ॥ २४ ॥ गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालंकरणादिभिः ॥ सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान्क्षमापयेत् ॥ २५ ॥ प्रार्थनामंत्रः ॥ युष्मत्प्रसा-दाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥ व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया ॥ २६ ॥

आभूषणसे सुसज्जित करके उन ब्राह्मणोंसे क्षमापन करावे ॥ २५ ॥ प्रार्थनामंत्र । आपके प्रसन्न होनेसे भगवान् मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहें और इस व्रतके प्रभावसे मेरे सातजन्मके कियेहुए पाप ॥ २६ ॥

नष्ट हो जांय और मेरी संतान स्थिर होय और मेरी इस अर्चनासे मेरे संपूर्ण मनोरथ सफल होंय ॥ २७ ॥ और मरण उपरांत मुझे विष्णुलोककी प्राप्ति होय ॥ २८ ॥ ऐसे उन ब्राह्मणोंसे क्षमापन कराके और प्रसन्न करके बिदा करे और फिर पूजाकी सामिग्री गौसमेत गुरुके निवेदन करे ॥ २९ ॥ फिर अपने बंधु बांधवोंसहित स्वयं भोजन करे कार्तिक और माघकी यह विधि कही है ॥ ३० ॥ ऐसे जो सम्यक् रीतिसे

तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः ॥ मनोरथाश्च सफलाः संतु नित्यं ममार्चया ॥ २७ ॥
देहांते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुयामतिदुर्लभम् ॥ २८ ॥ इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत् ॥
तामर्चां गुरवे दद्याद्गवा युक्तां तदा व्रती ॥ २९ ॥ ततः सुहृद्गणयुतः स्वयं भुंजीत भक्तिमान् ॥
कार्तिके वाथ तपसि विधिरेवंविधः स्मृतः ॥ ३० ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्कार्तिकस्य व्रतं नरः ॥ विपाप्मा
सर्वकामाढ्यो विष्णुसान्निध्यगो भवेत् ॥ ३१ ॥ सर्वव्रतैः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥ तत्कोटि-
गुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥ ३२ ॥

कार्तिकका व्रत करते हैं वह संपूर्ण कामनाओंसे युक्त पापरहित होकर विष्णुके समीप जाय है ॥ ३१ ॥ जो फल संपूर्ण तीर्थ संपूर्ण दानसे मिलता है उसके करोड गुना इसके विधानसे मिलता है ॥ ३२ ॥

जो कार्तिकका व्रत रखनेवाले विष्णुभगवानकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं वे धन्य हैं वेही सदा पूज्य हैं वेही सफल मनोरथ है ॥ ३३ ॥ कार्तिकके व्रतके भयके मारे देहस्थ सब पाप कांपने लगते हैं और वे फिर अपने रहनेके लिये जगह ढूंढते फिरते हैं ॥ ३४ ॥ जो कार्तिकके व्रतोंके नियमोंको भक्तिपूर्वक श्रवण करें हैं अथवा वैष्णवोंके आगे उनका वर्णन करें हैं वे दोनोंही उन व्रतोंके नियमोंके

ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां च सफलो भवः ॥ विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्तिकव्रतकारिणः ॥ ३३ ॥
देहे स्थितानि पापानि कंपं यांति च तद्भयात् ॥ क्व यास्यामो भवत्येष यद्यूर्ज्जव्रतकृन्नरः ॥ ३४ ॥
इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तान्कथयति वैष्णवाग्रतोऽपि ॥ तौ सम्यग्व्रतनियमात्फलं
भवेद्यत्तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभेते ॥ ३५ ॥ इति श्रीप० का० माहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पृथुरुवाच ॥
यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्ज्जस्य विस्तरात् ॥ तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥ १ ॥

फलसे जो जो फल होते हैं उन सबको वे प्राप्त करते हैं और उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीकृष्णलालकृते पद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये भाषाटीकान्विते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पृथु बोले हे महाराज ! जो आपने कार्तिकके व्रत विस्तारपूर्वक कहे उसमें जो तुलसीकी जड़में जो आपने विष्णुभगवान्का पूजन कहा है ॥ १ ॥

इसलिये मैं तुलसीके माहात्म्यको पूछना चाहूं हूं वह शार्ङ्गपाणी देवदेवकी प्यारी कैसे होती हुई ॥ २ ॥ हे नारद ! यह कहां और कैसे उत्पन्न भई तुम सर्वज्ञ हो यह सब संक्षेपसे मेरे सन्मुख कहिये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले प्राचीन कालमें इन्द्र शिवके दर्शनके लिये कैलासमें जाते भये सब देवताओं और अप्सराओंको अपने संग ले जाते हुए ॥ ४ ॥ जब इन्द्र शिवके घरमें पहुंचे तो

तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ कथं सातिप्रिया जाता देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद ॥ तद् ब्रूहि मे समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् ॥ सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगण-सेवितः ॥ ४ ॥ यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् ॥ पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्रानयन भीषणम् ॥ ५ ॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः ॥ एवं पुनः पुनः पृष्टः स यदा नोचिवान्नृप ॥ ६ ॥

वहां आयकर भयंकर स्वरूप आंख और डाढवाला एक पुरुष देखते हुए ॥ ५ ॥ इन्द्रने उस पुरुषसे पूछी तू कौन हैं जगतके ईश्वर शिवजी कहां गये हैं. ऐसे बार बार पूछनेपरभी उसने कुछ उत्तर न दिया ॥ ६ ॥

तब तो इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो उसे धमकाता हुआ बोला । इन्द्रने कहा मेरे बारंबार पूछनेपरभी तैंने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ७ ॥ इससे मैं तुझे इस वज्रसे मारता हूं. हे दुर्मते ! तेरी रक्षा कोन कर सके है ऐसे कहकर इन्द्रने उसके बडे बलसे वज्र मारा ॥ ८ ॥ इस प्रहारसे उसके कंठमें नीलता आगई और वह वज्र जलकर भस्म होता हुआ तब तो रुद्र अपने तेजसे उसे जलाता हुआ ॥ ९ ॥ यह

ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्यं वचोऽब्रवीत् ॥ इंद्र उवाच॥ यन्मया पृच्छयमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि॥७॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाभ्यहनद्दृढम् ॥८॥ तेनास्य कंठे नीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम् ॥ ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ इंद्रं च दंडवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ १० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय त्र्यंबकाय कपर्दिने ॥ त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोंऽधकनिषूदिने ॥ ११ ॥

दशा देखकर बृहस्पति बहुतही जल्दी हाथ जोडते हुए और इन्द्रको दंडके समान पृथ्वीपर गेरकर स्तुति करते हुए ॥ १० ॥ बृहस्पतिजी बोले हे देवाधिदेव आपको नमस्कार है, हे त्र्यंबक ! हे कपर्दि ! हे त्रिपुरारि ! हे शर्व ! हे अंधकासुतनिषूदन आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥

हे विरूप ! हे अतिरूप ! हे बहुरूप ! हे शंभो ! हे यज्ञविध्वंसकर्त्रे ! हे यज्ञफलदाता ॥ १२ ॥ हे कालांतक, हे काल, हे कृष्णसर्पके धारण करनहारे, हे ब्रह्मका शिर छेदन करनहारे, हे ब्राह्मणोंके हितकारी आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ नारदजी बोले । जब भगवान् शिवजीकी स्तुति बृहस्पतिजीने या प्रकार करी तब शिवजी त्रिलोकीके जलानेकी सामर्थ्य है जिसमें ऐसी नेत्रोंकी ज्वालाको रोककर बोले

विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शंभवे ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥ १२ ॥ कालांतकाय कालाय कालभोगिधराय च ॥ नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्रह्मण्याय नमो नमः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा शंभुर्धिषणेन जगाद तम् ॥ संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम् ॥ १४ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रतिस्तुत्याऽनया तव॥ इंद्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ १५ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहींद्रं शरणागतम् ॥ अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न भयो हूं जो आपकी इच्छा होय सोई वर मांगो और तुमने इन्द्रको जीवदान दिये है यासे तुम्हारो नाम जीव होयगो ॥ १५ ॥ बृहस्पतिजी बोले । हे देवेश ! जो आप प्रसन्न भये हो तो आपकी शरणमें आयो जो इन्द्र है ताकी रक्षा करो और आपके नेत्रसे जो यह अग्नि प्रगट हुई है इसे शांत करो ॥ १६ ॥

रुद्र बोले । यह अग्नि मेरे मतस्कके नेत्र फिर कैसे प्रवेश कर सकती है, मैं इसको दूर फेंकूं हूं जिससे इन्द्रको कष्ट नहीं देगी ॥ १७ ॥ नारदजी बोले । शिवजी ऐसे कहकर उस अग्निको हाथमें लेकर समुद्रमें फेंक देते हुए तब वह अग्नि गंगासागरके संगमपर जाकर गीरती हुई ॥ १८ ॥ वह अग्नि वहां बालरूप धारण कर रोने लगी उसके रुदनके शब्दसे पृथ्वी फिर कांपने लगी ॥ १९ ॥ उसके

रुद्र उवाच ॥ पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी ॥ एतत्क्षिपाम्यहं दूरे यथेंद्रं नैव पीडयेत ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणार्णवे ॥ सोऽपतत्सिंधुर्गंगायाः सागरस्य च संगमे ॥ १८ ॥ तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकंपद्धरणी मुहुः ॥ १९ ॥ स्वर्गादिसत्यलोकांतास्तत्स्वनाद्बधिराः कृताः ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २० ॥ तावत्समुद्रस्योत्संगे तं तु बालं ददर्श ह ॥ ततो ब्रह्माब्रवीद्वाक्यं कस्यायं शिशुरद्भुतः ॥ २१ ॥

शब्दसे स्वर्गलोकसे सत्यलोकतक बहरे होगये और अत्यंत विस्मित होकर कि यह क्या है ब्रह्माजी वहां आते हुए ॥ २० ॥ वहां क्या देखा कि समुद्रकी गोदीमें अग्नि बालरूपसे बैठा है तब ब्रह्माजी पूछते हुए कि यह अद्भुत बालक किसका है ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी इस बातको सुनकर समुद्र कहता हुआ ब्रह्माको आता हुआ देख समुद्रनेभी हाथ जोडें ॥ २२ ॥ शिर झुकाय प्रणाम कर वह बालक ब्रह्माजीकी गोदीमें दे दिया और कहा हे ब्रह्मन् ! गंगासागरके संगममें यह मेरा पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ २३ ॥ हे जगद्गुरो ! इसके जातकर्मादि संस्कार करिये नारदजी कहने लगे यह बात होही रही थी कि समुद्रके पुत्र उस बालकने ॥ २४ ॥ ब्रह्माकी डाढी

निशम्येति वचो धातुर्वाक्यं सिंधुरथाब्रवीत ॥ दृष्ट्वा ब्रह्माणमायातं समुद्रोऽपि कृतांजलिः ॥ २२ ॥
प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्संगे न्यवेशयत ॥ भो ब्रह्मन्सिंधुगंगायां जातोऽयं मम पुत्रकः ॥ २३ ॥
जातकर्मादिसंस्कारान्कुरुष्वास्य जगद्गुरो ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः
॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वँस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चे तन्नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ २५ ॥
कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽयं ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यामुद्धृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥२६ ॥

पकडलीनी और उसको बारबार हिलाता हुआ उसे डाढीके बारबार हिलानेसे ब्रह्माके नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे ॥ २५ ॥ जैसे तैसे बडी कठिनतासे डाढी छुडाकर ब्रह्माने सागरको कहा, ब्रह्मा बोला । कि इसने हमारे नेत्रोंके जल निकाला है ॥ २६ ॥

इससे इसका नाम जलंधर होगा ॥ २७ ॥ यह तरुण होनेपर संपूर्ण शास्त्रोंका जाननहार होयगा और विना रुद्रके इसको कोई मारभी न सकेगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले। ऐसे कह शुक्राचार्यको बुलवाय उसे राजगद्दीपर बैठाते हुए ॥ २९ ॥ फिर समुद्रसे आज्ञा मांगकर ब्रह्माजी तो अन्तरधान होगये, फिर सागर अपने पुत्रको देखदेख बहुत प्रसन्न होत भये और कालनेमिकी पुत्री वृंदाके साथ उसका विवाह

तस्माज्जलंधर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥ २७ ॥ अधुनैवैष तरुणः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् ॥ २९ ॥ आमंत्र्य सरितां नाथं ब्रह्मांतर्द्धानमागमत् ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा ॥ कालनेमिसुतां वृंदां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः ॥ स चापि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३१ ॥ इति प० का० ॥ ९ ॥

करानेको याचना करी ॥ ३० ॥ तब कालनेमि आदि सब असुरोंने प्रसन्न होकर वह कन्या विवाह दी और वह जलंधर उस अत्यंत प्रेम करनेवाली और आज्ञामें चलनेवाली उस स्त्रीको प्राप्त करके शुक्राचार्यकी सहायतासे अत्यन्त बली होकर पृथ्वीका पालन करने लगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकान्विते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले। देवतानसे जीते हुए जो राक्षस पहिले पातालमें जावसेथे वेभी उसका आश्रय पाकर भूमंडलमें आकर निर्भय रहने लगे ॥ १ ॥ एक बार उस असुरराजने राहुका सिर कटा हुआ देखकर उससे कटनेका कारण शुक्राचार्यसे पूछा ॥ २ ॥ तब उनने वह सब कथा कही कि पहिले देवताओंने समुद्रका मथन किया था और चौदह रत्नोंके हरनेकी कथा तथा दैत्योंके पराभवका सब वृत्तान्त कह

नारद उवाच ॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः ॥ तेऽपि भूमंडले जाता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ १॥ कदाचिच्छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट्॥ पप्रच्छ भार्गवं तस्य शिरसश्छेदकारणम् ॥ २ ॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम् ॥ रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥ ३ ॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा ॥ दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ ॥ ४ ॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशत्त्वरा ॥ जगादाखर्वमौलिस्तु देवेंद्रं वाक्यमद्भुतम् ॥ ५ ॥

सुनाया ॥ ३ ॥ तब तो अपने पिता सागरके मथनकी बात सुन क्रोधसे लाल लाल आंख करके घस्मरनाम अपने दूतको इन्द्रके पास भेजता हुआ ॥ ४ ॥ वह दूत स्वर्गमें जाय सुधर्मा नाम देवसभामें प्रवेश कर वह अखर्वमौलि इस अद्भुत वाक्यको इंद्रसे कहता हुआ ॥ ५ ॥

घस्मर बोला । संपूर्ण दैत्योंके अधीश्वर सागरके पुत्र जलंधरने अपना दूत बनकर भेजा है जो उसने कहा है उसे सुनिये ॥ ६ ॥ तुमने मेरे पिता समुद्रको पर्वतसे कैसे मथा और वहांसे निकले हुए रत्नोंको जो तुम ले आये हो उन्हें शीघ्र देदो ॥ ७ ॥ इस प्रकार दूतका वचन सुन विस्मित होकर भय और रोषके समन्वित इन्द्र घस्मरसे कहता हुआ ॥ ८ ॥ इन्द्रबोले । हे दूत ! जिस

घस्मर उवाच ॥ जलंधरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥ ६ ॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा ॥ नीतानि सर्वरत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ७ ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः ॥ उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृणु दूत मया पूर्वं मथितः सागरो यथा ॥ अद्रयो मद्भयाद्भीताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥ ९ ॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा ॥ तस्मात्तद्रत्नजातं तु मयाप्यपहृतं किल ॥ १० ॥

प्रकार हमने सागरका मथन किया था सो सुनो, पहिले मेरे डरे हुए पर्वत सागरने अपनी कुक्षिमें स्थापित कर लिये ॥ ९ ॥ और बहुतसे औरभी मेरे वैरी दैत्यनकी उसने रक्षा करी इससे मैंनेभी उसके रत्न हर लिये ॥ १० ॥

पहिले सागरका पुत्र शंखासुरभी देवताओंसे बैर करता था वहभी समुद्रके भीतर प्रवेश करता हुआ उसको मेरे छोटे भाईने निहत किया ॥ ११ ॥ अब तुम जाओ और समुद्रके मथनेका सब कारण जलंधरसे कहो, नारदजी बोले । जब इन्द्रने दूतसे यह कहकर विदा कियो तब वह पृथ्वीपर आवतो भयो ॥ १२ ॥ और इन्द्रका सब वृत्तांत जलंधर दैत्यको कह सुनाया यह सुनकर दैत्यके ओष्ठ क्रोधके मारे

शंखोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः ॥ ममानुजेन निहतः प्रविष्टः सागरोदरे ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कथयस्वास्य सर्वं मथनकारणम् ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेंद्रेणागमद्धुवम् ॥ १२ ॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा ॥ तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥ १३ ॥ उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥ तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तदा ॥ १४ ॥ दितिजाः प्रत्यपद्यंत कोटिशः कोटिशस्तदा ॥ अथ शुंभनिशुंभाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः ॥ १५ ॥

फडफडाने लगे ॥ १३ ॥ और संपूर्ण देवताओंके जीतनेका उद्योग करता हुआ उसके इस उद्योगसे संपूर्ण दिशा तथा पातालसे ॥ १४ ॥ करोडों दैत्य इकट्ठे होगये और शुंभनिशुंभसे आदि लेकर दैत्यराज करोडों सेनाओंको लेकर आते हुए ॥ १५ ॥

उसे दैत्यने स्वर्गमें जाकर नदनवनमें अधिकार कर लिया तब तो देवताभी अपने अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित हो अमरावतीसे बाहर निकले ॥ १६ ॥ दैत्योंकी बडी सेनाने पुरको चारों ओरसे घेर लीनो यह देख देव और दानवोंकी सेनाका घोर युद्ध होता हुआ ॥ १७ ॥ मुशल, परिघ, बाण, गदा, बरछी, फरसाआदि शस्त्रोंसे एक दूसरेको मारते हुए ॥ १८ ॥ गिर गये तथा गिराये भये हाथी

गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नंदनाधिष्ठितोऽभवत् ॥ निर्ययुश्चामरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥ १६ ॥ पुरमावृत्त्य तिष्ठंतं दृष्ट्वा दैत्यबलं महत् ॥ ततः समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः ॥ १७ ॥ मुशलैः परिघैर्बाणैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ तेऽन्योऽन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम् ॥ १८ ॥ क्षीणे चाभवतां सैन्ये रुधिरौघप्रवर्तिनी ॥ पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ १९ ॥ व्यराजत रणे भूमिः संध्याभ्रपटलैरिव ॥ ततो युद्धे हतान्दैत्यान्भार्गवः समजीवयत् ॥ २० ॥

घोडा रथ आदिसे वहां रुधिरकी धारा बहने लगी और दोनों सेना क्षीण होगईं ॥ १९ ॥ तथा सायंकालके बादलोंकी तरह वह रणभूमि शोभाको प्राप्त होती हुई और युद्धमें जितने दैत्य मारे गये उन सबको शुक्राचार्यने मृतसंजीवनी विद्याके मंत्रोंसे अभिमंत्रित किया हुआ जल वर्षाकर जीवित कर दिया ॥ २० ॥

इधर बृहस्पतिजीनेभी सब देवताओंको जीवित कर दिया ॥ २१ ॥ द्रोणाचलसे लाई हुई दिव्य औषधियोंद्वारा देवताओंको पुनः जीवित देख ॥ २२ ॥ जलंधरको बडा क्रोध हुआ और शुक्राचार्यसे कहने लगा, जलंधर बोला । हमसे मारे हुए देवता फिर कैसे जी उठे ॥ २३ ॥ आपकी यह मृतसंजीवनी विद्या तो और किसी जगह सुनीही नहीं गई है । तब

विद्यया मृतजीविन्या मंत्रितैस्तोयबिंदुभिः॥ देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदंगिराः ॥ २१ ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः ॥ दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥२२॥ जलंधरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ जलंधर उवाच ॥ मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठंति कथं पुनः ॥ २३ ॥ तवेयं जीविनी विद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम् ॥ शुक्र उवाच ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरंगिराः सुरान् ॥ जीवयत्येष तच्छीघ्रं द्रोणाद्रिं त्वमपाहर ॥ २४ ॥

शुक्राचार्य बोले । बृहस्पतिने द्रोणाचलसे दिव्य औषधियां मंगाकर इन देवताओंको जीवित कर दिया है इसलिये तुम शीघ्रही द्रोणाचलको हर लाओ ॥ २४ ॥

नारदजी बोले । दैत्येन्द्र यह बात सुनकर द्रोणागिरको शीघ्रही लायकर समुद्रमें फेंक देतो भयो और फिर घोर संग्राम करनेको आता हुआ ॥ २५ ॥ संग्राममें देवताओंको मरे हुए देख बृहस्पतिजीसे देवताओंने प्रार्थना की तब बृहस्पतिजी द्रोणाचलके पास गये और वहां द्रोणाचलको न देखते हुए ॥ २६ ॥ द्रोणपर्वतको दैत्य हर लेगये यह बात जान बृहस्पतिजी भयसे व्याकुल होगये श्वास चढ

नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तु दैत्येंद्रो नीत्वा द्रोणाचलं तदा ॥ प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं पुनरागान्महा-हवम् ॥ २५ ॥ अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः ॥ तावत्तत्र गिरींद्रं तु न ददर्श सुरार्चितः ॥ २६ ॥ ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः ॥ आगत्य दूरात्प्रोवाच श्वासाकुलितविग्रहः ॥ २७ ॥ गुरु-रुवाच ॥ पलायध्वं महादैत्यो नायं जेतुं यतः क्षमः ॥ रुद्रांशसंभवो ह्येष स्मरध्वं शक्रचेष्टितम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा ॥ दैत्येन वध्यमानास्ते पलायंते दिशो दश ॥ २९ ॥

आयो और दूरहीसे बोले ॥ २७ ॥ भागो भागो यह महादैत्य जीतनेमें नहीं आवेगो यह रुद्रके अंशसे उत्पन्न भयो है इन्द्र जो कुछ कियो है ताहि याद करो ॥ २८ ॥ बृहस्पतिकी यह बात सुने भयसे विह्वल होय और दैत्योंद्वारा खेदित होय दसों दिशानकू भागत भये ॥ २९ ॥

सागरका पुत्र जलंधर दैत्य देवताओंको भगेहुए देख शंख भेरीका शब्द करता हुआ जयध्वनिके संग अमरावतीपुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ ३० ॥ जब यह दैत्यने अमरावतीपुरीमें प्रवेश कियो तब इन्द्रादिक देवता दैत्यसे पीडित होकर सुमेरुपर्वतकी कंदरामें वास करते हुए ॥ ३१ ॥ ऐसे देवताओंको जीतकर वहां राज करता हुआ ॥ ३२ ॥ फिर जलंधर शुंभादिक सब बडे बडे दैत्योंको

स देवान्विद्रुतान्दृष्ट्वा दैत्यः सागरनंदनः ॥ शंखभेरीजयरवैः प्रविवेशामरावतीम् ॥ ३० ॥ प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥ ३१ ॥ एवं देवान्विनिर्जित्य तत्र राज्यं चकार सः ॥ ३२ ॥ ततस्तु सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विंद्रादिकानां विनिवेशयत्तदा ॥ शुंभादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ ३३ ॥ इति श्रीप० का० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायांतं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ भयप्रकंपिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥

देवताओंके स्थानोंपर अलग अलग नियत करके आप सुमेरु पर्वतको जाता हुआ ॥ ३३ ॥ इति कार्ति० भा० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदजी बोले । कि इंद्रादिक सब देवता दैत्यको फिर आता देख भयसे कांपने लगे और विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

देवता बोले। मच्छ कच्छपआदि अनेक रूपोकों धारण कर आप भक्तोंके कार्य संपादनके निमित्त सदाही उद्यत रहे और उनके दुःखोंको दूर करें ऐसे आपके अर्थ हमारी नमस्कार है, ब्रह्मा विष्णु शिवादिरूप धारण कर आप जगतकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं तथा गदा शंख पद्म और खड्ग आप अपने हाथोंमें धारण करें हैं ऐसे आपके लिये हमारी नमस्कार है ॥ २ ॥ हे रमावल्लभ ! हे असुर-

देवा ऊचुः ॥ नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहंत्रे ॥ विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशंखपद्मासिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥ रमावल्लभायासुराणां निहंत्रे भुजंगारियानाय पीताम्बराय ॥ मखादिक्रियापाककर्त्रेविकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३ ॥ नमो दैत्यसंतापिताऽमर्त्यदुःखाचलध्वंसदंभोलये विष्णवे ते॥ भुजंगेशतल्पेशयानार्कचन्द्राद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥

निसूदन ! हे गरुडनायक ! हे पितांबर धारण करनेवाले ! यज्ञादिक क्रियाओंके संपादन करनेहारे विकारयुक्त होनेवाले हे शरणागतत्राता हम आपको बार बार नमस्कार करें हैं ॥ ३ ॥ दैत्योंसे संतापित जो मनुष्य हैं उनके दुःखरूपी पहाडोंके ध्वंस करनेके लिये आप वज्ररूप हैं, आप शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं सूर्य और चन्द्रमा ये दो आपके नेत्र हैं ऐसे आपको हम बार बार नमस्कार करें हैं ॥ ४ ॥

नारदजी बोले । जो मनुष्य इस संकटनाशन स्तोत्रका पाठ करेंगे वे हरिभगवानकी कृपासे कभी कष्टोंसे पीडित नहीं होंयगे ॥ ५ ॥ इस प्रकारसे जब देवताओंने भगवानकी स्तुति करी तब दैत्योंके नाश करनहारे विष्णुभगवानने देवताओंके संकटको जान लिया ॥ ६ ॥ बडे क्रोधसे खिन्न मन करके विष्णुभगवान् सहसा उठ बैठे और शीघ्रही गरुडपर सवार हो लक्ष्मीसे यह बात कहते

नारद उवाच ॥ संकष्टनाशनं स्तोत्रमेतद्यस्तु पठेन्नरः ॥ स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥ इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वंति दनुजद्विषः ॥ तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥ ६ ॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः ॥ आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जलंधरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् ॥ तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥ ८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता च यदि सर्वदा ॥ तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥ ९ ॥

हुए ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले । तेरे भ्राता जलंधरने देवताओंको अत्यन्त दुःख देरखा है इससे मैं उनने बुलायो हूं सो मैं युद्धके लिये शीघ्रही जाऊं हूं ॥ ८ ॥ लक्ष्मी बोली । हे प्राणनाथ ! मैं आपकी प्राणप्यारी हूं और सदा भक्तिपूर्वक आपकी सेवा करूं हूं तो कृपानिधे ! आप यहतो बताओ कि मेरे भ्राताकूं आप संग्राममें कैसे मारोगे ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले। शिवजीके अंशसे पैदा होनेसे और ब्रम्हाके वरदानसे और प्रीतिसे यह जलंधर हमारे मारने योग्य नहीं है ॥ १० ॥ नारदजी बोले। यह कहकर गरुड़पर बैठे भये शंख चक्र गदा और खड्गको धारण करनेवाले विष्णु जहां देवता स्तुति कर रहे वहां शीघ्रतासे युद्धकेलिये पधारे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर अरुणके छोटे भ्राता गरुड़के पंखोंकी वायुसे पीडित और बवूलेसे ऊपरको उड़ाये

श्रीभगवानुवाच ॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वरदानतः ॥ प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलंधरः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढः शंखचक्रगदासिभृत् ॥ विष्णुर्वेगाद्ययौ युद्धं यत्र देवाः स्तुवंति ते ॥ ११ ॥ अथारुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः ॥ वात्या वितार्जिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ १२ ॥ ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्यान्वातप्रपीडितान् ॥ क्रोधादुत्प्लुत्य गगने ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥ १३ ॥ ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येंद्रयोर्महत् ॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥

गये दैत्य आकाशमें जैसे मेघ भ्रमण करते हैं तैसे घूमने लगे ॥ १२ ॥ फिर जलंधर दैत्यनको वायुसे पीडित देखकर क्रोधसे उछलकर आकाशमें विष्णुके पास जातौ भयौ ॥ १३ ॥ फिर विष्णु और दैत्यका बड़ा भारी युद्ध भयौ बाणोंसे आकाशको परिपूर्ण करदिया ॥ १४ ॥

विष्णुने बाणोंसे दैत्यके ध्वजा छत्र और घोड़ा काट दिये और एक बाण वाके हृदयमें मारौ ॥ १५ ॥ फिर वह दैत्य उछलकें हाथमें गदा लेकर शीघ्रतासे गरुडके माथेमें मारकर पृथ्वीमें गिरातौ भयौ ॥ १६ ॥ विष्णुने हंसकर अपने खड्गसे उसकी गदा काट दीनी तब वह विष्णुके हृदयमें जोरसे घूसा मारतौ भयौ ॥ १७ ॥ फिर वे दोनों महाबली भुजा घूंसा और घोंटू इनकी मारसे पृथ्वीको

विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन चाहनत् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णु-र्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्सहृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहु-युद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ रुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगंभीरनिःस्वनः ॥ १९ ॥

शब्दायमान करते युद्ध करते भये ॥ १८ ॥ या प्रकार वे दोनों अच्छी तरह युद्ध करनलगे तब प्रतापी विष्णुभगवान् मेघसरीकी गंभीर वाणीसे दैत्यराजसे बोले ॥ १९ ॥

विष्णुभगवान् बोले । मैं तेरे पराक्रमसे प्रसन्नहूं तू वर मांग जो नहीं देनेयोग्यभी तेरा मनोरथ होगा उसकोभी मैं तुझको देता हूं ॥ २०॥ जलंधर बोला । हे भावुक ! जो आप प्रसन्न हो तो मुझको एक वर दो वह यह है कि मेरी बहिन लक्ष्मीको साथ लेकर और अपने गणोंसमेत मेरे घरमें रहो ॥ २१ ॥ नारदजी बोले । बहुत अच्छा यह कहकर भगवान् देवगणों और लक्ष्मीसमेत जलंधरके पुरमें पधारे

विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येंद्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥
जलंधर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेकं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलंधरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलंधरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम् ॥ २३ ॥
देवगंधर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंज्ञितम् ॥ तदात्मवशगं कृत्वातिष्ठत्सागरनंदनः ॥ २४ ॥

॥ २२ ॥ महाबाहु जलंधर देवताओंके अधिकारमें दैत्योंको स्थापित करके फिर पृथ्वीपर आया ॥ २३ ॥ देवता गंधर्व सिद्ध इनके बीचमें जो वस्तु रत्नके समान उत्तम थी उसको अपने वशमें करके वह सागरनंदन स्थित होगया ॥ २४ ॥

देव गंधर्व सिद्ध सर्प राक्षस मनुष्य इनको अपने पुरमें वसाकर त्रिलोकीका राज्य आप करत भयो ॥ २५ ॥ इस प्रकार जलंधर देवता-ओंको अपने वशमें करके पिता जैसे पुत्रका पालन करता है तैसेही धर्मसे अपनी प्रजाको पालन करत भयो ॥ २६ ॥ इसप्रकार जब जलंधर राज्य करने लगा तब न तो कोई रोगी होता न दुखिया न निर्बल होता न कोई दरिद्री दिखाई पड़ता ॥ २७ ॥ इसप्रकार जब

देवगंधर्वसिद्धाद्यान्सर्पराक्षसमानुषान् ॥ स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥ २५ ॥ एवं जलंधरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः ॥ धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ २६ ॥ न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा ॥ न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति॥ २७ ॥ एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च दिदृक्षयाहम् ॥ कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणं च सेवितुम् ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दानवेन्द्र धर्मका राज्य करने लगा तब एक समय मैं उसकी राज्यलक्ष्मी देखनेकेलिये और भगवान्का सेवन करनेको वहां जात भयौ ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणान्तरगत कार्तिकमाहात्म्यस्य भाषाटीकायामेकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

नारदजी बोले । अत्यन्त भक्तिसमेत त्रिलोकीका राजा दानवेन्द्र विधिपूर्वक मेरा पूजन करके हंसकर यह वचन कहत भयो ॥ १ ॥
हे ब्रह्मन् ! आप कहांसे आये और आपने कुछ वस्तु देखी है और जिसलिये आप आये हो वह हे मुने ! मुझसे आज्ञा करिये ॥ २ ॥
नारदजी बोले । हे दैत्येंद्र ! मैं एक समय अपनी इच्छासे कैलासपर्वतपर गया वहां पार्वतीके साथ बैठे हुए शिवजीको देखत भयो ॥ ३ ॥

नारद उवाच ॥ स मां संपूज्य विधिवद्दानवेंद्रोऽतिभक्तिमान् ॥ संप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद भुवनेश्वरः ॥ १ ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन् किंचिद्दृष्टं त्वया प्रभो ॥ यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ गतः कैलासशिखरे दैत्येंद्राहं यदृच्छया ॥ तत्रोमया सहासीनं दृष्टवानस्मि शंकरम् ॥ ३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने ॥ कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥ ४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा ॥ क्वापी दृशी भवेदृद्धिस्त्रिलोक्यां वा न वेति च ॥ ५ ॥

दशहजार योजन चौड़ा वह कैलासपर्वत है कल्पवृक्षोंका उसमें सघन वन है सैंकड़न उसमें कामधेनु हैं और चिन्तामणियोंका प्रकाश हो रहा है ॥ ४ ॥ उस बडे आश्चर्यको देखकर मेरे मनमें तर्कना पैदा हुई कि तीनों लोकोंमें इसके समान ऋद्धि कहीं है कि नहीं ॥ ५ ॥

है दैत्येन्द्र! तब तुम्हारी ऋद्धिकी मुझको याद आई उसके देखनेके लिये मैं आपके पास आया हूं ॥ ६ ॥ स्त्रीरत्नके विना इस तुम्हारी ऋद्धिको देखता हुआ विचार करताहूं कि महादेवजीके समान दुसरा समृद्धियुक्त त्रिलोकीके बीच नहीं हैं ॥ ७ ॥ अप्सरा नागकन्याआदि यद्यपि आपके घरमें हैं तौभी वे पार्वतीके समान सुंदरी नहीं हैं ॥ ८ ॥ जिसके सुन्दरतारूपी समुद्रमें डूबकर ब्रह्माने अपने वीर्यको

तदा तवापि दैत्येंद्र समृद्धिः संस्मृता मया ॥ तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥ ६ ॥ त्वत्स-मृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् । तर्कयामि शिवादन्यास्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥ अप्सरो नागकन्याद्या यद्यपि त्वद्गृहे स्थिताः ॥ तथापि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥ ८ ॥ यस्या लाव-ण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः ॥ स्ववीर्यममुचत्पूर्वं तया कान्योपमीयते ॥ ९ ॥ वीतरागोऽपि च यथा मदनारिः स्वलीलया ॥ सौंदर्य्यगहनेऽभ्रामि शफरीरूपया पुरा ॥ १० ॥

छोड दिया उसके लिये और क्या उपमा दीजाय ॥ ९ ॥ मछलीकारूप धारण करनेवाली जिस पार्वतीने कामदेवके शत्रु महादेवजीको सुन्दरतारूपी वनमें अपनी लीलासे भ्रमण कराया ॥ १० ॥

रचना करतीसमय ब्रह्माजीने पार्वतीके रूपको बेर २ देखकर अप्सराओंको बनाया परन्तु पार्वतीके समान कोई अप्सरा न भई ॥ ११ ॥
इससे स्त्रीरत्नके भोगनेवाले उन महादेवजीका वैभव श्रेष्ठ है परन्तु सब रत्नोंके पति जो तुम हो तुम्हारा वैभव वैसा नहीं है ॥ १२ ॥
ऐसे कहिके उससे आज्ञा लेकर जब मैं चलदिया तब वह दैत्योंका राजा उसके रूपके सुननेसे कामदेवसे पीडित होत भयो ॥ १३ ॥

यस्याः पुनः पुना रूपं पश्यन्धातापि सर्जने ॥ ससर्जाप्सरसस्तासां तत्समैकापि नाभवत् ॥ ११ ॥
अतः स्त्रीरत्नसंभोक्तुः समृद्धिस्तस्य सा वरा ॥ तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥ १२ ॥ एवमु-
क्त्वा तमामंत्र्य गते मयि स दैत्यराट् ॥ तद्रूपश्रवणादासीदनंगज्वरपीडितः ॥ १३ ॥ अथ संप्रेष-
यामास दूतं तु सिंहिकासुतम् ॥ त्र्यंबकाय तदा किंचिद्विष्णुमायाविमोहितः ॥ १४ ॥ कैलासमगमद्राहुः
कुर्वञ्छुक्लेंदुवर्चसम् ॥ कार्ष्ण्येन कृष्णपक्षेंदुवर्चसं स्वांगजेन तम् ॥ १५ ॥

इसके पीछे भगवानकी मायासे मोहित होकर सिंहिकाके पुत्र राहुको महादेवजीके पास भेजा ॥ १४ ॥ शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान
उज्वल उस कैलासको अपने अंगकी कालिमासे क्षीणचन्द्रमाके समान काला करता हुआ वह राहु कैलासको गया ॥ १५ ॥

नंदीश्वरकरके निवेदन किया गया वह राहु महादेवजीके पास गया और महादेवजीकी भृकुटीसे सूचना किया गया यह वचन बोला ॥ १६ ॥ राहु बोला। हे वृषध्वज ! देवता और सर्पोंसे सेवा करने योग्य त्रिलोकिके स्वामी रत्नेश्वर जलंधरकी आज्ञा सुनो ॥ १७ ॥ स्मशानमें रहनेवाले हाडोंको धारण करनेवाले दिगम्बर जो तुम हो तिनकी हिमालयकी बेटी ऐसी सुंदर स्त्री किसकारणसे है ॥ १८ ॥

निवेदितस्तु देवाय नंदिना प्रविवेश सः ॥ त्र्यंबकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥
राहुरुवाच ॥ देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेस्तथा ॥ सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ॥ १७ ॥
श्मशानवासिनो नित्यमस्थिभारवहस्य च ॥ दिगंबरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥ १८ ॥ अहं
रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिका ॥ तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥ १९ ॥
नारद उवाच ॥ वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः ॥ अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥२०॥

मैं रत्नोंका स्वामी हूं और वह स्त्रियोंमें रत्न है इससे वह मेरेही योग्य है तुम भिकारी है इससे तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ नारद बोले। राहु इस प्रकार बात कर रहाथा महादेवजीकी भृकुटीके मध्यसे भयंकर और वज्रके समान शब्द करता हुआ एक पुरुष पैदा होत भयो ॥ २० ॥

सिंहके समान जिसका मुख है चलायमान जिसकी जीभ है जिसके नेत्रोंमें ज्वाला दिखाई देरही है उपरको केश हैं सूखो शरीर है ऐसे वह पुरुष दूसरो नृसिंहके समान मालूम होत भयो ॥ २१ ॥ खानेकेलिये आते हुए उस पुरुषको देखि डरके मारे राहू भागो बाहर जाकर उसको उस पुरुषने पकड लियो ॥ २२ ॥ जब वह राहुको पकडके खान लगो तब शिवजीने वासें निषेध कियो कि यह मारने

सिंहास्यः प्रचलज्जिह्वः सज्वालनयनो महान् ॥ ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥ २१ ॥
स तं खादितुमायांतं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः ॥ पलायन्नतिवेगेन बहिः स च दधार तम् ॥ २२ ॥ धृत्वा
खादितुमारब्धस्तावद्रुद्रेण वारितः ॥ नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः ॥ २३ ॥ मुंचेति पुरुषः
श्रुत्वा राहुं तत्याज सोंऽबरे ॥ राहुं त्यक्त्वा स पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपत् ॥ २४ ॥ पुरुष उवाच ॥
क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा ॥ किं भक्षयामि देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ २५ ॥

योग्य नहीं है यह दूत है और पराधीन है ॥ २३ ॥ छोड़ दो यह वचन सुनकर राहुको आकाशमें छोड दियो फिर महादेवजीकी पुरुषने प्रार्थना की ॥२४॥ पुरुष बोला । मुझको भूख बहुत लगी है मैं भूखसे थक रहाहूं हे देव! मैं क्या खाऊं यह मेरेलिये आज्ञा देउ ॥ २५ ॥

शिवजी बोले । तुम शीघ्रतासे अपने हाथ पैरके मांसका भक्षण करो । नारदजी बोले । शिवजीकरके आज्ञा दिये हुए उस पुरुषने हांथपांवके मांसको ऐसो भक्षण कियो कि केवल शिरही बाकी रह गयो ॥ २६ ॥ शिरही जिसका शेष रह गया ऐसे पुरुषको देखकर शिवजी प्रसन्न भये और आश्चर्य करके उस कठिन कर्म करनवारे पुरुषसे बोले ॥ २७ ॥ शिवजी बोले । तेरा नाम कीर्तिमुख है तू

ईश्वर उवाच ॥ भक्षय स्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ नारद उवाच ॥ स शिवेनैवमाज्ञप्त-श्चखाद पुरुषः स्वकम् ॥ हस्तपादोद्भवं मांसं शिरः शेषं यथाभवत् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्र-सन्नस्तदा शिवः ॥ उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मे द्वारगः सदा ॥ नारद उवाच ॥ तदाप्रभृति देवस्य द्वारि कीर्तिमुखः स्थितः ॥ २८ ॥ नार्च-यंतीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ २९ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपतद्बर्बरस्थले ॥ अतः स बर्बरो भूत इति भूमौ प्रथा गतः ॥ ३० ॥

सदा मेरे द्वारपर रह । नारदजी बोले । उसी दिनसे कीर्तिमुख देवताओंके द्वारपर रहने लगा ॥ २८ ॥ जो पहिले कीर्तिमुखका पूजन नहीं करें हैं उनका पूजन वृथा है ॥ २९ ॥ उससे छोड़ो गयो राहु बर्बरस्थलमें गिरो याहीसे बर्बर होत भयो पृथ्वीमें इसीप्रकार प्रसिद्ध है ॥ ३० ॥

फिर वह राहु अपनो द्वितीय जन्म मानतो भयो और जलंधरके पास जायके ये सब बातें कहीं ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलंधरोपाख्याने भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले। जलंधर इस बातको सुनकर कोपसे जिसका शरीर व्याकुल होगया करोडों दैत्योंको साथ लेकर जल्दी चलदिया ॥ १ ॥ चलतेहुए इसको शुक्र और राहू आगे दिखाई दिये मुकुट पृथ्वीपर गिर गयो

ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ॥ समेत्य सर्वं कथयांबभूव जलंधरायैव विचेष्टितं तत् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये जलंधरोपाख्याने दूतसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः ॥ निजगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥ १ ॥ गच्छतोऽस्याग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥

और वेगके कारण आपभी किसल पडो ॥ २ ॥ दैत्योंकी सेनासे भरेहुए सैंकडों विमानोंसे आकाश ऐसे शोभित होत भयो जैसे वर्षाऋतुमें बादलोंसे शोभित होता है ॥ ३ ॥

इन्द्रादिक देवता उस समय उसके इस उद्योगको देखकर छिपकरके महादेवजीके पास गये और प्रार्थना करके बोले ॥ ४ ॥ देवता बोले । हे स्वामिन् ! देवताओंकी इस विपत्तिको आप नहीं जानते हो इससे हमारी रक्षाकेलिये सागरपुत्रको मारो ॥ ५ ॥ इसप्रकार देवताओंके वचनको सुनकर महादेवजी हंसकर विष्णुभगवान्को बुलाकर ये वचन बोले ॥ ६ ॥ शिवजी बोले । हे विष्णो !! आपने

तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं विविज्ञपुः ॥ ४ ॥
देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां प्रभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनंदनम्
॥ ५ ॥ इति देववचःश्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
ईश्वर उवाच ॥ जलंधरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा
वैकुंठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः
संख्ये त्वमेव जहि दानवम् ॥ ८ ॥

संग्राममें जलंधरको क्यों नहीं मारा अपने वैकुंठको छोडकर उलटे उसके घरपर जाकर वसे हो ॥ ७ ॥ विष्णु बोले । आपके अंशसे जन्म होनेसे और लक्ष्मीका भ्राता होनेसे युद्धमें उस दैत्यको नहीं मारो आपही मारिये ॥ ८ ॥

शिवजी बोले । ये बडा तेजस्वी है इन शस्त्रअस्त्रोंसे मेरे हाथसे नहीं मरेगा इससे सब देवताओंसहित अपने तेजका अंश हमारे लिये शस्त्र बनानेकेलिये देउ ॥ ९ ॥ नारदजी बोले । इसके बाद उससमय विष्णुआदि देवताओंने अपने २ तेज दिये वे सब मिलकर एक हो गये फिर महादेवनेभी अपनो तेज छोड़ो ॥ १० ॥ उस बडे तेजसे महादेवजीने ज्वालाओंके समूहसे अति भयंकर सुदर्शन

ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंऽशं शस्त्रार्थे दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्यैक्यमगमन्नीशो दृष्ट्वा स्वं चामुचन्महः ॥ १० ॥ तेनाकरोन्महादेवो महसां शस्त्रमुत्तमम् ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालाति-भीषणम् ॥ ११ ॥ तेजःशेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरिः ॥ तावज्जलंधरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥ १२ ॥

नामक उत्तम चक्र बनायो ॥ ११ ॥ फिर उससमय जो कुछ तेज बाकी रहा उससे इन्द्रने वज्र बनायो तब करोड़न हाथी घोड़ा रथ और मनुष्यनसमेत जलंधरको कैलासके पासकी भूमिमें देखते भये ॥ १२ ॥

उसको देखकर सब देवता जैसे आये वैसेही छिपकर जात भये और युद्धकेलिये शीघ्रही संग्राममें आये ॥ १३ ॥ नंदी गणेश स्वामिकार्तिक आदि सब देवता महादेवजीकी आज्ञासे युद्धके लिये उन्मत्त होकर कैलाससे बडे वेगसे आवत भये ॥ १४ ॥ फिर कैलासके पासकी भूमिमें देव और दैत्योंका शस्त्रअस्त्रोंसे पूर्ण भारी युद्ध होत भयो ॥ १५ ॥ वीरोंको प्रसन्न करनेवाले भेरी मृदंग और

तं दृष्ट्वालक्षिता जग्मुर्देवाः सर्वे यथागताः ॥ गणाः समरमायाता युद्धायातित्वरान्विताः ॥ १३ ॥
नंदीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः ॥ १४ ॥ ततः
समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकाभुवि ॥ प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥ १५ ॥ भेरीमृदंगशं-
खौघानिः स्वनैर्वीरहर्षणैः ॥ गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकंपत ॥ १६ ॥ शक्तितोमरबाणौघमुस-
लप्रासपट्टिशैः ॥ व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥ १७ ॥

शंख इनके शब्दोंसे और हाथी घोड़ा रथके शब्दोंसे शब्दायमान भूमि कांपने लगी ॥ १६ ॥ शक्ति तोमर बाण मूसल फरसा वेणा इन शस्त्रोंसे आकाश ऐसे शोभित होने लगा जैसे उल्काओंसे भराहुआ शोभित होता है ॥ १७ ॥

मरेहुए रथ हाथी घोड़ा इनसे पृथ्वी ऐसी शोभाको प्राप्त भई जैसे बज्रसे गिराये पर्वतोंके शिखरोंके गिरनेसे शोभित होती है ॥ १८ ॥ युद्धमें मरेहुए दैत्योंको मृतसंजीविनीविद्याके बलसे शुक्राचार्यजी बार २ जिवावत भये ॥ १९ ॥ उनको देखकर शिवजीके गण बहुत व्याकुल हुए और भयभीत होकर शिवजीके पास जाकर शुक्राचार्यका सब चरित्र कहा ॥ २० ॥ इसके बाद महादेवजीके मुखसे

निहतैरथनागाश्वैस्तदाभूमिर्व्यराजत ॥ वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता ॥ १८ ॥ प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत् ॥ युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसंजीवनीबलात् ॥ १९ ॥ तं दृष्ट्वा व्याकुलीभूता गणाः सर्वे भयान्विताः ॥ शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥ २० ॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीव भीषणा ॥ तालजंघा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥ २१ ॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयंती महासुरान् ॥ भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामांतर्हिता नभः ॥ २२ ॥

भयंकर कृत्या प्रकट भई ताडके वृक्षके समान जिसकी जांघ है गुफाके समान मुख है स्तनोंसे वृक्ष पीडित हो रहे हैं ॥ २१ ॥ वह उस युद्धभूमिमें आकर असुरोंका भक्षण करती भई और शुक्राचार्यको अपनी भगमें धरके अंतर्धान् होकर आकाशमें चली गई ॥ २२ ॥

युद्धके लिये उन्मत्त भये प्रसन्न मुखवाले देवता शुक्रको पकडे देखकर आनंदसे दैत्योंकी सेनाको मारते भये ॥ २३ ॥ शिवजीके गणोंके भयसे पीडित होकर दैत्योंकी सेना अलग २ होगई जैसे वायुके वेग चलनेसे तृणोंका समूह बिखर जाता है ॥ २४ ॥ शिवजीके गणोंके भयसे भागीहुई दैत्योंकी सेनाको देखकर सेनापति निशुंभ और शुंभ और महाबली कालनेमि ये क्रोध करके संग्रामके बीचमें जाते भये

विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा ॥ अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः ॥ २३ ॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥ वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥ २४ ॥ भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वा मर्षयुता ययुः ॥ निशुंभशुंभसेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥ २५ ॥ त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥ मुंचंतः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २६ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥ रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनां प्रकंपयन् ॥ २७ ॥

॥ २५ ॥ वर्षाऋतुमें बादल जैसे पानी बरसाते हैं इसीतरह इन तीनोंने बाणोंकी वर्षा की और शिवजीकी सेनाको घेर लिया ॥ २६ ॥ फिर दैत्योंके बाणोंके समूह टीड़ी दलकी तरह आकाश सब दिशाओंको घेरते भये और गणोंको कंपाते भये ॥ २७ ॥

सैंकडों बाणोंसे घायल भये गणोंके शरीरसे रुधिर बरसने लगा वसंतऋतुमें जैसे केशूका वक्ष दिखाई देता है ऐसे दिखाई देते भये और कुछ नहीं दिखाई देता था ॥ २८ ॥ तब कुछ आप गिरपडे कुछ गिराये गये तिनरबितर होकर सब युद्धको छोडकर भाग गये ॥ २९ ॥ फिर नंदी गणेश और स्वामिकार्तिक ये अपनी सेनाको भगीहुई देखकर क्रोधकरके वेगसे दैत्योंको हठसे रोकते भये ॥ ३० ॥ इति

गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः ॥ वसंते किंशुकाभासा न प्राज्ञायंत किंचन ॥ २८ ॥ पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः ॥ त्यक्त्वा संग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखा भवन् ॥ २९ ॥ ततश्च भग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्तिकेयाः ॥ त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नंदीभमुखषण्मुखान् ॥ अमर्षादभ्यधावंत द्वंद्वयुद्धाय दानवाः ॥ १ ॥

श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारदजी बोले । वे दैत्य नंदीश्वर गणेशजी और स्वामिकार्तिक इत्यादि शिवजीके गणोंको देखकर क्रोधसे द्वंद युद्धके लिये दौड़ते भये ॥ १ ॥

कालनेमि नंदीश्वरके पास युद्धकेलिये गया शुंभ गणेशजीके निशुंभ स्वामिकार्तिकके पास कवच धारण करके युद्धकेलिये शीघ्र गया ॥ २ ॥ निशुंभने स्वामिकार्तिकके मोरके हृदयमें पांच बाण मारे वह मूर्च्छित होकर गिरत भयो ॥ ३ ॥ फिर कार्तिकेयने कुपित होकर जो शक्ति ग्रहण की तबतक निशुंभ अपनी शक्तिसे शीघ्रतासे उनको गिरावत भयो ॥ ४ ॥ फिर नंदीश्वर बाणोंके समूहसे कालनेमिको

नंदिनं कालनेमिश्च शुंभो लंबोदरं तथा ॥ निशुंभः षण्मुखं वेगादभ्यधावत दंशितः ॥ २ ॥
निशुंभः कार्तिकेयस्य मयूरं पंचभिः शरैः ॥ हृदि विव्याध वेगेन मूर्छितः स पपात ह ॥ ३ ॥ ततः
शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राह रोषितः ॥ तावन्निशुंभो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ४ ॥ ततो
नंदीशरव्रातैः कालनेमिमविध्यत ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुस्सारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥ कालनेमिस्तु
संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नंदिनः ॥ तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥ ६ ॥

वेधत भये और सात बाणनसे घोडा धनुष्य और सारथि काट दिये ॥ ५ ॥ कालनेमिने क्रोधकरके नंदीको धनुष्य काट दियो उस बलीने धनुष्य छोड़के कालनेमिकी छातीमें त्रिशूलको प्रहार कियो ॥ ६ ॥

शूलसे फटगया है हृदय जिसका घोडे जिसके मरगये सारथि मरगया ऐसे कालनेमिने पर्वतकी चोटीको उखाडकर उससे नंदीश्वरको गिरा दिया ॥ ७ ॥ इसके बाद शुंभ रथमें बैठा गणेशजी मूषकपर बैठकर आये ये दोनों आपसमें बाणोंसे वेधते भये ॥ ८ ॥ उससमय गणेशजीने एक बाण शुंभके हृदयमें मारो और तीन बाण सारथिके हृदयमें मारे और पृथ्वीमें गिराय दियो ॥ ९ ॥ फिर शुंभनेभी कुपित

स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः ॥ अद्रेः शिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत् ॥ ७ ॥
अथ शुंभो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ ॥ युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥ ८ ॥ गणेशस्तु
तदा शुंभं हृदि विव्याध पत्रिणा ॥ सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥ ९ ॥ ततोऽतिक्रुद्धः
शुंभोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम् ॥ मूषकं च त्रिभिर्विध्द्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥ मूषकः शरभि-
न्नांगश्चलितुं न शशाक ह ॥ लंबोदरः समुत्तीर्य पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥

होकर गणेशजीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी और तीन बाण गणेशजीके मारे और मेघकी तरह गर्जने लगा ॥ १० ॥ बाणोंसे जिसका अंश घायल होगया ऐसा मूषक चलनेको समर्थ नहीं हुआ गणेशजी उसके ऊपरसे उतरकर पैदल चलने लगे ॥ ११ ॥

फिर गणेशजीने फरसा मारकर शुंभको पृथ्वीमें गिराय दियो फिर आप मूषकपर बैठ गये ॥ १२ ॥ कालनेमि और निशुंभ ये दोनों क्रोध करके बाणोंसे गणेशको मारने लगे जैसे कोई मनुष्य अंकुशसे हाथीको मारे ॥ १३ ॥ महाबली वीरभद्र गणेशजीको पीडित देखि करोडों भूतोंको लेकर वेगसे दौडकर आये ॥ १४ ॥ कूष्मांड भैरव वैताल योगिनीगण और पिशाच ये दौडकर उनके पीछे आये

ततो लंबोदरः शुंभं हत्वा परशुना हृदि ॥ अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥ १२ ॥ कालनेमि-निशुंभश्चाप्युभौ लंबोदरं शरैः ॥ युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥ तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः ॥ अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥ १४ ॥ कूष्मांडा भैरवाश्चापि वैताला योगिनीगणाः ॥ पिशाचा योगिनीसंघा गणाश्चापि तमन्वयुः ॥ १५ ॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः ॥ निनादैर्भरिता सर्वा पृथिवी समकंपत ॥ १६ ॥ ततो भूतान्यधावंत भक्षयंति स्म दानवान् ॥ उत्पतंत्यापतंति स्म नन्दतुश्च रणांगणे ॥ १७ ॥

॥ १५ ॥ इसके बाद किलकिला शब्दसे और सिंहकी गर्जनासे और सेनाके शब्दसे पूर्णहुई पृथ्वी कांपती भई ॥ १६ ॥ फिर भूत दौडकर आये और दैत्योंको खाने लगे और संग्राममें उछलते कूदते थे ॥ १७ ॥

नंदीश्वर और स्वामिकार्तिक ये दोनों सावधान होकर शीघ्रतासे आये और संग्राममें बाणोंसे दैत्यनको मारत भये ॥ १८ ॥ छिन्नभिन्न और मारकर गिराये गये और शिवजीके गणोंकरके खाये दैत्योंसे वह सेना व्याकुल और उदास होगई ॥ १९ ॥ बलवान् सागरका पुत्र अपनी सेनाको छिन्नभिन्न देखकर बड़ी ध्वजावाले रथमें बैठकर गणोंके सन्मुख आवत भयो ॥ २० ॥ उस समय दोनों सेनाओंके

नंदी च कार्तिकेयश्च समाश्वस्तौ त्वरान्वितौ ॥ निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरंतरशरव्रजैः ॥ १८ ॥ छिन्नभि-न्नाहतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा ॥ व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ १९ ॥ प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनंदनः ॥ रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥ २० ॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शंखभेरी-रवास्तथा ॥ अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥ जलंधरशरव्रातैर्नीहारस्य तलैरिव ॥ द्यावा-पृथिव्योराच्छन्नमंतरं समपद्यत ॥ २२ ॥

बीचमें हाथी रथ घोड़ा इनको शब्द होनलगो शंख और भेरी बजनलगे और सिंहोंकी गर्जना होनलगी ॥ २१ ॥ जलंधरके बाणोंके झुंडसे पृथ्वी और आकाशका मध्य भाग ऐसे ढक गया जैसे कुहरसे ढक जाता है ॥ २२ ॥

जलंधरने पांच बाण गणेशजीके मारे नौ बाण नंदीके और वीस वीरभद्रके मारे और मेघकीतरह गर्जने लगा ॥ २३ ॥ कार्तिकेयने शीघ्रतासे एक शक्ति दैत्यके मारी शक्तिके प्रहारसे दैत्यका चित्त कुछ व्याकुल होत भयो ॥ २४ ॥ फिर जलंधरके शरीरमें क्रोध भर आया एक गदा लेकर स्वामिकार्तिकके मारी गदाके लगनेसे वे भूमिपर गिर पडे ॥ २५ ॥ इसी तरह शीघ्रही गदासे नंदीको पृथ्वीपर गिरा

गणेशं पंचभिर्विध्वा शैलादिं नवभिः शरैः ॥ वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥ २३ ॥ कार्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ॥ जुघूर्ण शक्तिनिर्भिन्नः किंचिद्व्याकुलमानसः ॥ २४ ॥ ततः क्रोधपरीतांगः कार्तिकेयं जलंधरः ॥ गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥ २५ ॥ तथैव नंदिनं वेगादपातयत भूतले ॥ ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाच्छिनत् ॥ २६ ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥ २७ ॥

दिया फिर गणेशजीको क्रोध आया सो अपने फरसासे उसकी गदा काटदी ॥ २६ ॥ वीरभद्रने तीन बाण दैत्यके हृदयमें मारे और सात बाणोंसे घोडा ध्वजा धनुष और छत्र काटदिये ॥ २७ ॥

फिर दैत्यराजको क्रोध आया उसने एक भयंकर शक्तिसे गणेशजी गिरादिये और दूसरे रथमें बैठ गयो ॥ २८ ॥ इसके बाद जलंधर कुपित होकर शीघ्रही वीरभद्रके पास आया सूर्यके समान तेजवाले वे दोनों आपसमें लड़ने लगे ॥ २९ ॥ फिर वीरभद्रने बाणोंसे उसके घोडे गिरादिये और धनुष काट दियो फिर वह परिघालेकर दौडत भयो ॥ ३० ॥ नारदजी बोले । उस दैत्यने शीघ्र आकर परिघा

ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् ॥ गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥ २८ ॥ अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् ॥ धनुश्चिच्छेद दैत्येंद्रः पुप्लुवे परिघायुधः ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ स वीरभद्रं त्वरयाभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्द्धनि ॥ स चापि वीरः प्रविभिन्नमूर्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वीरभद्रके मस्तकमें मारा वीरभद्रके मस्तकमें चोट आगई लोहू गेरतेहुए पृथ्वीमें गिरतभये ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नारदजी बोले। शिवजीके गण वीरभद्रको गिरा देखकर डरके मारे रणको छोडकर पुकारते हुए शिवजीके पास गये ॥ १ ॥ इसके बाद शिवजी गणोंका कोलाहल सुनकर बैलपर चढ़कर हंसते हुए संग्राममें आये ॥ २ ॥ शिवजीको आये देखकर उनके गण सिंहकीसी गर्जना करते हुए लौटकर आये और दैत्योंको बाणोंकी वर्षासे मारत भये ॥ ३ ॥ दैत्यलोग भयंकर महादेवजीको देखि ऐसे भाग गये

नारद उवाच ॥ पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् ॥ अगमँस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ १ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चंद्रशेखरः ॥ अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्रामं प्रहसन्निव ॥ २ ॥ रुद्रमायांतमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः ॥ निवृत्ताः संगरे दैत्यान्निजघ्नुः शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः ॥ कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥ ४ ॥ अथ जलंधरो दैत्यान्विद्रुतान्प्रेक्ष्य संगरे ॥ रोषादधावच्चंडीशं मुंचन्बाणान्सहस्रशः ॥ ५ ॥

जैसे कार्तिकमें स्नान और व्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर जैसे पाप भाग जाते हैं ॥ ४ ॥ इसकेबाद जलंधर अपने दैत्योंको युद्धमें भागे देखकर कुपित हो हजारन बाणनको छोड़ता हुआ महादेवजीके ऊपर दौडा ॥ ५ ॥

शुंभ निशुंभ श्वमुख कालनेमि बलाहक खड्गरोमा प्रचंड घस्मर इत्यादि शिवजीके ऊपर दौडे ॥ ६ ॥ शिवजी बाणोंके अंधकारसे ढकीहुई अपनी सेनाको देखकर दैत्योंके बाणोंको काट अपने बाणोंसे आकाशको ढकदेते भये ॥ ७ ॥ उस समय दैत्योंको बाणरूपी बबूलेसे व्याकुल कर देते भये और प्रचंड बाणोंके जालसे दैत्य पृथ्वीपर गिरादिये ॥ ८ ॥ फिर क्रोधकरके फरसासे खड्गरोमाका शिर

शुंभो निशुंभो श्वमुखः कालनेमिर्बलाहकः ॥ खड्गरोमा प्रचंडश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः ॥ ६ ॥ बाणांध-कारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः ॥ बाणजालमवच्छिद्य स्वबाणैरावृतं नभः ॥ ७ ॥ दैत्यांश्च बाणवा-त्याभिः पीडितानकरोत्तदा ॥ प्रचंडबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥ ८ ॥ खड्गरोम्णः शिरः कोपात्तदा परशुनाच्छिनत् ॥ बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद्द्विधा ॥ ९ ॥ बध्द्वाच घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्य-हनद्भुवि ॥ वृषशृंगहताः केचित्केचिद्बाणैर्निपातिताः ॥ न शेकुरसुराः स्थातुं गजा सिंहार्दिता इव ॥ १० ॥

काटदिया और खट्वांगसे बलाहक दैत्यके शिरके दो टूंक करदिये ॥ ९ ॥ घस्मर दैत्यको फांसीसे बांधकर भूमिमें गिराया कुछ दैत्य बैलके सींगसे मारे गये कुछ बाणोंसे गिराये गये उनके सामने असुर ठहरनेको समर्थ न हुए जैसे सिंहसे पीडित हाथी सिंहके सामने नहीं ठहरते हैं ॥ १० ॥

फिर क्रोधयुक्त जलंधरने युद्धमें शिवजीको वेगसे बुलाया उस समय उसका शब्द वज्रके समान होगया ॥ ११ ॥ जलंधर बोला। हे जटाधर! मेरे साथ युद्ध करो इनके मारनेसे क्या होगा जो कुछ तेरे बीचमें बल है वह दिखा ॥ १२ ॥ नारद बोले। यह कहकर दश बाण महादेवजीके

ततः कोपपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलंधरः ॥ आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः ॥ ११ ॥ जलंधर उवाच ॥ युध्यस्वाद्य मया सार्धं किमेभिर्निहतैस्तव ॥ यच्च किंचिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा दशभिर्बाणैर्जघान वृषभध्वजम् ॥ स तान्प्राप्तांश्छितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसञ्छिवः ॥ १३ ॥ ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः ॥ १४ ॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान् ॥ अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदां बाणैर्द्विधाकरोत् ॥ १५ ॥ तथापि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रं जिघांसया ॥ तावच्छिवेन बाणोघैः क्रोशमात्रमपाकृतः ॥ १६ ॥

मारे महादेवजीने हंसकर अपने पैने बाणोंसे उनको काट दिया ॥ १३ ॥ फिर सात बाणोंसे ध्वजा छत्र और धनुष काट दिये ॥ १४ ॥ उसको धनुष कट गयो रथ टूट गयो तब गदा लेकर शिवजीके पास गयो शिवजीने बाणोंसे उसकी गदाके दो टूंक कर दिये ॥ १५ ॥ घूंसा उठाकर

शिवजीको मारने गयो फिर शिवजीने बाण मारकर उसको एक कोस हटाय दियो ॥ १६ ॥ फिर जलंधरने शिवजीको अधिक बली समझकर शिवजीको मोहित करनवारी गांधर्वी नामकी एक अद्भुतमाया रची ॥ १७ ॥ फिर गंधर्व और अप्सराओंके गण नाचने और गाने लगे, और सब ताल वेणु और मृदंग बजामन लगे ॥ १८ ॥ उस बडे आश्चर्यको देखकर महादेवजी नादसे मोहित

ततो जलंधरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम् ॥ ससर्ज मायां गांधर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥ १७ ॥
ततोजगुश्च नन्तृतुर्गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ तालवेणुमृदुंगाद्यान्वादयंति स्म चापरे ॥ १८ ॥ तद्दृष्ट्वा मह-
दाश्चर्यं रुद्रो नादविमोहितः ॥ पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥ १९ ॥ एकाग्रीभूतमा-
लोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः ॥ कामार्त्तः स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताभवत् ॥ २० ॥ युद्धे शुंभनिशुं-
भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ दशदोर्दंडपंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ २१ ॥

हो हाथसे गिरते हुए शस्त्रोंकोभी भूल गये ॥ १९ ॥ जलंधर दैत्य महादेवजीको मोहित देखकर कामदेवसे पीडित होकर जल्दी पार्वतीके पास जात भयो ॥ २० ॥ संग्राममें महाबली शुंभनिशुंभ दैत्योंको खडे करके दश भुजा पांच मुख तीन नेत्र और जटाओंको धारण करके ॥ २१ ॥

जलंधर बैलपर बैठगया इसके बाद शिवकी प्रिया पार्वती रुद्रको आते देखि सखियोंके बीचसे उठकर उनके दर्शनकेलिये आई ॥ २२ ॥ वह दैत्यराज सुंदरी पार्वतीको देखकर वीर्य छोडत भयो तब उसके सब अंग जड होगये ॥ २३ ॥ इसके बाद गौरी दैत्यको जानकर भयभीत होकर छिपकर शीघ्रही उत्तर दिशामें मानससरोवरमें जातभई ॥ २४ ॥ जैसे बिजुली चमककर क्षणभरमेंही छिप

महावृषभमारूढः स बभूव जलंधरः ॥ अथो रुद्रं समायांतमालोक्य भववल्लभा ॥ अभ्याययौ सखीमध्या त्तद्दर्शनपथे भवत् ॥ २२ ॥ यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ॥ तावत्स वीर्यं मुमुचे जडांगश्चाभवत्तदा ॥ २३ ॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ॥ जगामांतर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे ॥ २४ ॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव ॥ जवेनागात्पुनर्युद्धे यत्र देवो वृषध्वजः ॥ २५ ॥ पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा ॥ तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥ २६ ॥

जाती है इसीतरह पार्वतीको वहांसे गई देखकर शीघ्रही युद्धमें शिवजीके पास आवत भयो ॥ २५ ॥ पार्वतीनेभी मनमें भय मानकर विष्णुका स्मरण किया सोई विष्णु पास आय बैठे और दर्शन दिया ॥ २६ ॥

पार्वती बोली । हे विष्णो जलंधर दैत्यने बडा विचित्र कर्म किया उस दुर्मतिका कर्म आपको मालूम नहीं है क्या ॥ २७॥ श्रीभगवान् बोले । कि उसने अपने मरनेका उपाय हमको दिखा दिया है अर्थात् जैसे वह कपटरूप धारण करके तुमको छलने आया है इसीप्रकार हमभीं उसके घर जांयगे दूसरी तरह यह नहीं मरसकता क्योंकि इसकी स्त्री पतिव्रता है उसने इसकी रक्षा कररक्खी है ॥ २८ ॥

पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलंधरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तेनैव दर्शितः पंथा वयमप्यन्वयामहे ॥ नान्यथासौ भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालंधरं पुरम् ॥ अथ रुद्रश्च गंधर्वानुगतः संगरे स्थितः ॥ २९ ॥ अंतर्धानगतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥ ३० ॥

नारदजी बोले । कि विष्णु भगवान् यह कहकर जलंधरके पुरको चले गये और रुद्र गंधर्वसमेत युद्धमें स्थित रहे ॥ २९ ॥ तब शिवजीने देखी कि दैत्यकी माया अब अंतर्धान होगई अब शिवजीको बोध हुआ ॥ ३० ॥

फिर महादेव अपने चित्तमें विस्मय करके क्रोधयुक्त हो युद्धकेलिये जलंधरके पास गये वह दैत्यभी शिवजीको युद्धकेलिये फिर आये देखि संग्राममें बाणोंकी वरसा करत भयो ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये भाषाटीकायां शिवजालंधरसंवादोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारद बोले । विष्णुने जलंधरके पुरमें जाकर वृन्दाके पातिव्रत्य भंग करनेका विचार किया ॥ १ ॥ इसकेबाद वृन्दादेवी

ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलंधरं रुषा ॥ स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये शिवजलंधरसंग्रामो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुर्जालंधरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् ॥ पातिव्रत्यस्य भंगाय वृंदायाश्चाकरोन्मतिम् ॥ १ ॥ अथ वृंदारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥ भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगंबरम् ॥ २ ॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् ॥ दक्षिणाशागतं मुंडं तमसाप्यावृतं तदा ॥ ३ ॥

स्वप्नमें अपने स्वामी जलंधरको भैंसेपर चढेहुए तेल लगाएहुए नंगे शरीर देखत भई ॥ २ ॥ काले पुष्पोंके आभूषण पहिने हुए राक्षसोंकरके युक्त मुंड मुडाये अंधकारके बीच दक्षिण दिशाको जातेहुए अपने पतिको देखत भई ॥ ३ ॥

अपने समेत अपने नगरको सागरमें डूबा देखा उससमय निद्रा उछट गई और वह अपने स्वप्नका विचार करने लगी ॥ ४ ॥ उदय हुए सूर्यमें छेद दिखाई दिये और कान्तिहीन देखा. इसको अनिष्ट जानकर भयसे विव्हल होकर विलाप करती हुई ॥ ५ ॥ गोपुर अटा अटारी इत्यादि भूमिमें कहीं उसको सुख नहीं मिला फिर दो सखियोंको संग लेकर नगरके बागमें आवतभई ॥ ६ ॥ डरीहुई वह

स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह ॥ प्रबुद्धा सातदा बाला दुःस्वप्नं प्रविचिन्वती ॥ ४ ॥ ददर्शोदि-
तमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः ॥ तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदंती भयविह्वला ॥ ५ ॥ कुत्रचिन्नालभ-
च्छर्मगोपुराट्टालभूमिषु ॥ ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥ ६ ॥ संत्रस्ता साभ्रमद्बाला नाल-
भत्कुत्रचित्सुखम् ॥ वनाद्वनांतरं याता नैव वेदात्मनः सुखम् ॥ ७ ॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शा-
तीव भीषणौ ॥ राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्रानयनभीषणौ ॥ ८ ॥

बाला भ्रमण करती भई पर कहीं सुख नहीं मिला वनसे दूसरे वनमें जातभई पर सुखको प्राप्त नहीं भई ॥ ७ ॥ फिर घूमती हुई वह बाला भयंकर दो राक्षसोंको देखतभई सिंहके समान जिनका मुख है डाढ और नेत्र इनसे भयंकर हैं ॥ ८ ॥

उनको देखकर व्याकुल होकर भागने लगी उस समय शांतरूप मौन धारण करे शिष्यसमेत एक तपस्वीको देखत भई ॥ ९ ॥ फिर राक्षसोंके डरके मारे अपने हाथ मुनिके गलेमें डार दिये और बोली कि हे मुने! मैं आपकी शरण आई हूँ मेरी रक्षा करो ॥ १० ॥ मुनिने राक्षसोंके डरसे विव्हल हुई उस वृंदाको देखकर हुंकार करके राक्षसोंको भगा दिया ॥ ११ ॥ मुनिकी हुंकारके भयसे भगे हुए उन

तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपराऽभवत् ॥ ददर्श तापसं शांतं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्कंठमावृत्य निजबाहुलतां भयात् ॥ मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत ॥ १० ॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा ॥ हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ तदा ॥ ११ ॥ तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ वृन्दोवाच ॥ रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्कृपानिधे ॥ किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशम्यताम् ॥ १३ ॥

दोनों राक्षसोंको देखकर वृन्दा पृथ्वीमें प्रणाम करके ये वचन बोली ॥ १२ ॥ वृन्दा बोली । हे कृपानिधे! आपने इस घोर भयसे मेरी रक्षा की अब मैं कुछ प्रार्थना करती हूँ कृपा करके सुनिये ॥ १३ ॥

मेरे स्वामी जलंधर रुद्रकेसंग युद्धके लिये गये हैं वे संग्राममें कैसे हैं हे सुंदर व्रत करनेवाले ये मुझसे कहो ॥ १४ ॥ नारद बोले । मुनि इस वाक्यको सुनकर कृपाकरके ऊपरको देखन लगे इतनेहीमें दो बंदर आये मुनिको प्रणाम करके आगे खडे होगये ॥ १५ ॥ मुनिने अपनी भृकुटीसे बंदरको इशारा करदिया वे आकाशको चलेगये फिर थोडी देरमें आकर सामने खडे होगये ॥ १६ ॥

जलंधरो हि मे भर्त्ता रुद्रं योध्दुं गतः प्रभो ॥ स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥ तावत्कपीसमायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ गत्वा क्षणार्द्धादागत्य वानरावग्रतः स्थितौ ॥ १६ ॥ शिरःकबंधहस्तौ च दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमंडलुजलं सिक्त्वा मुनिनाश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥

समुद्रके पुत्र जलंधरके शिर और धड बंदरोंके हाथमें देखकर अपने पतिके कष्टसे दुःखी होकर मूर्छित होकर भूमिपर गिरती भई ॥ १७ ॥ मुनिने कमंडलका जल छिड़ककर उसकी मूर्छा जगाई अपने मस्तकको पतिके मस्तकपर रखकर दुःखी होकर विलाप करने लगी ॥ १८ ॥

वृन्दा बोली। जो पहिले सुखके समय मोकू आनंद देते है वो आप आज मुझ निरपराधिनी प्यारीसे क्यों नहीं बोले हो ॥ १९ ॥ जिनने विष्णुसमेत देवता गंधर्व सब जीत लिये वो त्रिलोकीके जीतनेवाले आपको आज तपस्वीने कैसे मार दिया ॥ २० ॥ नारद बोले वृन्दा उस समय रोकर मुनिसे बोली। वृन्दा बोली। हे कृपानिधे! हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! इस मेरे प्यारे पतिको जिवाय दो इस जिवानेके

वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगंधर्वा निर्जिता विष्णुना सह ॥ स कथं तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत ॥ मुनिरुवाच ॥ नायं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि ॥ २२ ॥

लिये आपही समर्थ हों ॥ २१ ॥ नारदजी बोले। इस वचनको सुनकर हंसकर मुनि बोले। इसको शिवजीने मार दिया है ये नहीं जीसकता ॥ २२ ॥

तौभी तेरे ऊपर कृपाकरके इसको जिवाता हूँ । नारद बोले । यह कहकर ब्राह्मण अंतर्धान होगया इतनेहीमें सागरनंद आया ॥ २३ ॥ और वृंदाको आलिंगन करके प्रसन्न मन हो उसके मुखका चुंबन किया फिर वृंदाभी अपने पतिको देखि बहुत प्रसन्न हुई ॥ २४ ॥ उस वनके बीचमें अपने पतिके संगमें बहुत दिनतक रमण करती भई कभी रतिके अंतमें वह विष्णुको पहिचान गई ॥ २५ ॥ फिर

तथापि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे विप्रस्तावत्सागरनंदनः॥ २३॥ वृंदामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुंबे प्रीतमानसः ॥ अथ वृंदापि भर्त्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ २४ ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥ नारद उवाच ॥ कदाचित्सुरतस्यांते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥ २५ ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥२६॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायी प्रत्यक्षतापसः ॥ यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ २७ ॥

वृन्दाको क्रोध आया विष्णुको धमकाकर ये वचन बोली । वृन्दा बोली । दूसरेकी स्त्रीके संग विषय करनेवाले जो तुम हो तुह्मारे शीलको धिक्कार है ॥ २६ ॥ मैंने तुमको भलेप्रकारसे जान लिया है तुम प्रत्यक्ष तपस्वीरुप धारण करनेवाले मायावी हो वे जो तुमने मायासे दो दिखलाये वे तुम्हारे द्वारपाल थे ॥ २७ ॥

वेही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीको हरण करेंगे और तुम स्त्रीके दुःखसे दुखी होकर वनमें बन्दरोंसे सहायता लोगे ॥ २८ ॥ और सबके ईश्वर होनेपरभी भ्रमण करोगे और ये जो तुम्हारा शिष्यहै सो हिरन बनेगा यह कहकर वृन्दा चिता बनाकर अग्निमें प्रविष्ट होत भई ॥ २९ ॥ वृन्दाके बीचमें जिनका मन आसक्त है ऐसे विष्णुने उसको रोका पर तौभी नहीं रुकी ॥ ३० ॥ फिर विष्णु उस

तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् ॥ २८ ॥
भ्रम सर्वेश्वरेणोऽयं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ॥ २९ ॥
विष्णुना वार्यमाणापि तस्यामासक्त चेतसा ॥ ३० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृंदां चिता-
भस्मरजोवगुंठितः ॥ तत्रैव तस्थौ मुनिसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शांतिम् ॥ ३१ ॥
इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये वृन्दोपाख्याने विष्णुसाक्षात्कारो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वृन्दाको स्मरण करते हुए उसकी चिताकी रजको लगाते हुए वहीं रहे मुनियोंने उनको बहुत समझाया पर चित्त शांत न हुआ ॥ ३१ ॥
इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये वृन्दोपाख्याने श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नारदजी बोले । फिर जलंधरने महादेवजीको अति पराक्रमी जानकर मायासे शिवजीको मोहित करनेकेलिये एक पार्वतीका स्वरूप बनाया ॥ १ ॥ रोतीहुई पार्वतीको रथके ऊपर बांधकर लेआया और निशुंभादिक दैत्य उसको माररहे हैं यह शिवजीने देखा ॥ २ ॥ इसप्रकार पार्वतीको देखकर शिवजीभी व्याकुल होगये और अपने बलको भूलकर नीचा मुखकरके खडे रहगये ॥ ३ ॥ फिर जलंधरने

नारद उवाच ॥ ततो जलंधरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् ॥ चकार मायया गौरीं त्र्यंबकं मोहयन्निव ॥ १ ॥ रथोपरि च तां बध्द्वा रुदंतीं पार्वतीं शिवः ॥ निशुंभप्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ २ ॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥ ततो जलंधरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ आपुंखमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरासि चोदरे ॥ ४ ॥ ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना संप्रबोधितः ॥ रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ५ ॥

पुंखसमेत तीन बाण शिवजीके शिर छाती और पेटमें शीघ्रतासे मारे ॥ ४ ॥ फिर विष्णुने शिवजी समझाये तब मालुम होगई कि यह माया रची है फिर शिवजीने ज्वालामालाकरके भयंकर रूप धारण किया ॥ ५ ॥

महादेवजीके अतिभयंकर रूपको देखकर वे दैत्य सामने ठहरनेको समर्थ न हुए दसोंदिशाओंमें भाग गये ॥ ६ ॥ फिर महादेवजी शुंभनिशुंभको शाप देत भये कि तुम मेरे युद्धमेंसे भागे हो इसलिये पार्वतीके हाथसे तुम मारे जाओगे ॥ ७ ॥ फिर जलंधरने वेगसे पैने बाणोंकी वरसा की उस समय पृथ्वीतल बाणोंके अंधकारसे ढकगया ॥ ८ ॥ जबतक शिवजीने उसके बाणोंको वेगसे

तस्यातीव महारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुराः ॥ न शेकुः संमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ ६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुंभनिशुंभयोः ॥ मम युद्धादपाक्रांतौ गौर्य्या वध्यौ भविष्यथः ॥ ७ ॥ पुनर्जलंधरो वेगाद्ववर्ष निशितैः शरैः ॥ बाणांधकारसंछन्नं तदा भूमितलं महत् ॥ ८ ॥ यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्य बाणचयं जवात् ॥ तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥ ९ ॥ वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणांगणात् ॥ रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥ १० ॥

काटा तबतक उस बली दैत्यने नंदीके एक परिघा मारदिया ॥ ९ ॥ उसके लगनेसे वह बैल युद्धमेंसे हटगया महादेवने उसको पकडके खींचाभी पर न रुका ॥ १० ॥

फिर शिवजी बहुत कुपित भये और भयंकर रूप धारण करके सूर्यके समान तेजवाले सुदर्शन चक्रको शीघ्रतासे चलावत भये ॥ ११ ॥ पृथ्वी आकाशको जलाता हुआ वेगसे भूमिपर गिरगयो बडे विशाल जिसके नेत्र ऐसे शिरको काटकर गिरावत भयो ॥ १२ ॥ रथसे उसका शरीर पृथ्वीको शब्दायमान करता हुआ गिरपड़ा उसके शरीरमेंसे तेज निकलकर शिवजीके शरीरमें लय होगया ॥ १३ ॥

ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः ॥ चक्रं सुदर्शनं वेगाच्चिक्षेपादित्यवर्चसम् ॥ ११ ॥ प्रदहन्रोदसी वेगात्पपात वसुधातले ॥ जहार तच्छिरः कायान्महदायतलोचनम् ॥ १२ ॥ रथात्कायः पपातास्य नादयन्वसुधातलम् ॥ तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुद्रे लयमागतम् ॥ १३ ॥ वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां लयमागतम् ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षेणोत्फुल्ललोचनाः ॥ १४ ॥ प्रणम्य शिरसा देवं शशंसुर्विष्णु-चेष्टितम् ॥ देवा ऊचुः ॥ महादेव त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् ॥ १५ ॥

वृन्दाके शरीरसे तेज निकलकर गौरीके देहमें लीन होतभयो, आनन्दसे खिर रहे हैं नेत्र जिनके ऐसे ब्रह्मादिक देवता होतभये ॥ १४ ॥ शिरसेप्रणाम करके विष्णुकी स्तुति करन लगे । देवता बोले । हे महादेव ! आपने देवताओंकी शत्रुके भयसे रक्षा की ॥ १५ ॥

एक बात और पैदा होगई उसमें अब क्या करें वह यह है कि वृन्दाकी सुन्दरतासे विष्णु भगवान् मोहित होरहे हैं और उसकी चिताकी रजमें स्थित हैं ॥ १६॥ रुद्र बोले। हे देवताओ! विष्णुका मोह दूर करनेकेलिये शरणके योग्य जो योगमाया देवी है उसकी शरण जाओ वह तुम्हारो कार्य सिद्ध करैगी ॥ १७ ॥ नारद बोले। यह कहकर भूतगणोंसमेत विष्णु अंतर्धान होगये और देवता भक्तोंसे प्रेम कर-

किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे ॥ वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ १६ ॥
रुद्र उवाच ॥ गच्छध्वं शरणं देवा विष्णोर्मोहापनुत्तये ॥ शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्य्यं करि-
ष्यति ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवः सह भूतगणैस्तदा ॥ देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं
भक्तवत्सलाम् ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवाः सत्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः ॥
यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ १९ ॥

नवाली योगमायाकी स्तुति करत भये ॥ १८ ॥ देवता बोले। जिसके शरीरसे सृष्टिपालन और नाश करनवारे सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये तीन पैदा होतभये और जिसकी इच्छासे संसारकी उत्पत्ति और नाश होता है उस मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥

जो कि तेईस भेदोंकरके उच्चारण की जाती है, और संपूर्ण जगतमें वर्तमान है और जिसके रूप कर्म जाननेकेलिये तीनों देवता जड़ होजाते हैं उस मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं ॥ २० ॥ जिसकी भक्ति करनवारे पुरुष सदा दारिद्र भय मोह तिरस्कार इनको नहीं पाते हैं उस भक्तवत्सल मूलप्रकृतिको सदा नमस्कार करते हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले । जो मनुष्य एकाग्र चित्त होकर इस स्तोत्रका

या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ॥ यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवास्तु मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २० ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् ॥ न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ स्तवमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः ॥ दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥ २२ ॥ इत्थं स्तुवंतस्ते देवास्तेजोमंडलमास्थितम् ॥ ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥ २३ ॥

त्रिकाल पाठ करता है उसको दारिद्र मोह दुःख ये कभी स्पर्श नहीं करते ॥ २२ ॥ इसप्रकार स्तुति करते भये देवता ज्वालासे व्याप्त किये हैं दिशाओंके अंतर जिसने ऐसे तेजको आकाशके बीचमें देखत भये ॥ २३ ॥

उसके बीचमें आकाशवाणी हुई वह देवताओंने सुनी। शक्ति बोली। मेरे बीचमें तीन गुण हैं इससे तीन भेद मेरे हैं ॥ २४ ॥ गौरी लक्ष्मी सरस्वती इनमें रज तम सत्व ये तीनों गुण हैं हे देवताओ! तुम उनके पास जाओ वह तुम्हारा कार्य करैगी ॥ २५ ॥ नारद बोले। हे राजन्! विस्मयसे खिले हैं नेत्र जिनके ऐसे देवताओंके देखते २ वह तेज अन्तर्धान होत भयो ॥ २६ ॥ फिर वे देवता आकाशवाणीके

तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ॥ शक्तिरुवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधै-र्गुणैः ॥ २४ ॥ गौरीलक्ष्मीस्वराज्योती रजःसत्वतमोगुणैः ॥ तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यति च वः सुराः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ शृण्वतामिति तां वाचमंतर्धानमगान्महः ॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लने-त्राणां तत्तदा नृप ॥ २६ ॥ ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ॥ गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥ २७ ॥ ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुस्तदा च ताः ॥ २८ ॥

वचनको मानकर गौरी लक्ष्मी और सरस्वतीके पास जाकर भक्तिसे प्रणाम करतभये ॥ २७ ॥ फिर वे भक्तवत्सल देवी देवताओंको शरण आये देखकर उनकेलिये बीज देत भई और बोली ॥ २८ ॥

देवी बोलीं । इन बीजोंको विष्णुके पास जाकर बोय देउ फिर तुम्हारो कार्य सिद्ध होयगो ॥ २९ ॥ नारद बोले । फिर देवता और सिद्धनके समूह प्रसन्न हो बीजोंके लेकर वहां बोवतभये जहां वृन्दाकी चिता भूमिमें विष्णुभगवान् दुःखी होकर विराजें हैं ॥ ३० ॥ यह सत्यवचनका माहात्म्य हमने कहा इसको जो कोई पढै वा सुनै वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य एकाग्र मन करके

देव्य ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठति ॥ निवपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति॥ २९॥ नारद उवाच ॥ ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसंघाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते॥ वृंदान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥ ३० ॥ इत्येतत्सत्यवाक्यस्य माहात्म्यं समुदाहृतम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ३१॥ शृणुयादेकचित्तेन अविघ्नेनापि युज्यते॥ सुतैर्विमुक्ता या नारी नरश्चापि पठेत्सदा ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलंधरवधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इसका श्रवण करै उसको कभी विघ्न नहीं होय और जो पुत्रहीन स्त्रीपुरुष सुनेंगे उनके पुत्रकी प्राप्ति होयगी ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां जलंधरवधोनाम सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥

नारदजी बोले । हे राजन् ! वहां बोएहुए बीजोंसे तीन वनस्पति होतभईं धात्री मालती और तुलसी ॥ १ ॥ ब्रह्माकी स्त्रीकी बीजसे धात्री नामकी होतभई लक्ष्मीके बीजसे मालती भई और गौरीके बीजसे तुलसी होतभई ॥ २ ॥ उससमय विष्णु स्त्रीरूपी वनस्पतियोंको देखकर वृन्दाके रूपके संभ्रमसे उठके खडे होतभये ॥ ३ ॥ कामातुर विष्णुने प्रीतिपूर्वक उनकी तरफ देखा और तुलसी और धात्री

नारद उवाच ॥ ॥ क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् ॥ धात्री च मालती चैव तुलसी च नृपोत्तम ॥ १ ॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता ॥ गौरीभवा च तुलसी रजःसत्वतमोगुणाः ॥ २ ॥ स्त्रीरूपिण्यो वनस्पत्यो दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप ॥ उत्तस्थौ संभ्रमाद्वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वाशु तेन ता रागात्कामासक्तेन चेतसा ॥ ते चापि तुलसीधात्र्यौ विष्णुमेवावलोकताम् ॥ ४ ॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम् ॥ तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराभवत ॥ ५ ॥ अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिता ॥ धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥ ६ ॥

विष्णुकी ओर देखती भई ॥ ४ ॥ जो बीज लक्ष्मीने ईर्षाकरके पहिले दिया इससे उससे पैदाहुई स्त्री लक्ष्मीसे ईर्षा करत भई ॥ ५ ॥ इससे अति निन्दित वह बर्बरी इस नामको प्राप्तभई धात्री और तुलसी उनमें प्रीति होनेसे विष्णुको प्रीति देनवारी होतभई ॥ ६ ॥

फिर विष्णु भगवान् उस दुःखको भूल गये और उनको संग लेकर देवतानकरके नमस्कार किये गये वैकुंठको जातभये ॥ ७ ॥ इसीसे कार्तिकके उद्यापनमें तुलसीके वृक्षके पासही विष्णुका पूजन होता है और तुलसी विष्णुकी प्रीति बढानेवाली कही गई है ॥ ८ ॥ जिसके घरमें तुलसीका वन हैं वह घर तीर्थरूप है उसमें यमके दूत नहीं आते हैं ॥ ९ ॥ तुलसीका वन सब पापोंका हरनेवाला और कामोंको

ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ॥ वैकुंठमगमद्धृष्टः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ७ ॥ कार्तिको-द्यापने विस्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ॥ तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा सा ततः स्मृता ॥ ८ ॥ तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायांति यमकिंकराः ॥ ९ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ॥ रोपयंति नरश्रेष्ठास्ते न पश्यंति भास्करिम् ॥ १० ॥ दर्शनं नर्मदायास्तु गंगास्नानं तथैव च ॥ तुलसीवनसंसर्गः सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥ ११ ॥

देनेवाला है जो कोई इसको घरमें लगाते हैं वे यमराजका दर्शन नहीं करते हैं ॥ १० ॥ नर्मदाका दर्शन गंगास्नान और तुलसी वनका संसर्ग ये तीनों समान है ॥ ११ ॥

तुलसी लगानेसे पालनेसे पानी देनेसे दर्शनसे स्पर्शसे मनुष्योंके वाणी मन और शरीरसे इकट्ठे किये हुए पापोंको भस्म कर देय है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य तुलसीकी मंजरीनसे विष्णु और शिवका पूजन करता है वह गर्भरूपी घरमें नहीं आता है निःसंदेह मुक्तिका भागी होता है ॥ १३ ॥ पुष्करसे लेकर तीर्थ गंगासे आदि लेकर नदियां वासुदेवसे आदि लेकर देवता ये तुलसीदलमें ठहरते हैं

रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥ तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥ १२ ॥ तुलसीमंजरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥ न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥ १३ ॥ पुष्करादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥ वासुदेवादयो देवास्तिष्ठंति तुलसीदले ॥ १४ ॥ तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुंचति ॥ यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥ विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ॥ १५ ॥ तुलसीकाष्ठजं यस्तु चंदनं धारयेन्नरः ॥ तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ तुलसीकी रज लगाकर जो आदमी प्राणोंको छोड़ता है सैंकड़न पापोंसे युक्त होनेपरभी यमराज उसको नहीं देख सकता है हे राजन्! वह विष्णुके समीप प्राप्त होता है ये वारंवार सत्य है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य तुलसीकाष्ठके चंदनको धारण करता है उस शरीरसे किया हुआभी पाप शरीरका स्पर्श नहीं करता ॥ १६ ॥

हे राजन्! जहां २ तुलसीकी छाया होय वहां २ श्राद्ध करना चाहिये वह पितरोंको दिया हुआ अक्षय होता है ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम! आमलेकी छायामें जो पिंडदान करता है नरकमें पड़े हुएभी उसके पितर तृप्त होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! माथेमें हाथमें मुखमें देहमें जो आमलेको धारण करता है वह स्वयं हरि जानना चाहिये ॥ १९ ॥ आमलेका फल तुलसी और द्वारकाकी रज ये जिसके शरीरमें

तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेन्नृप ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १७ ॥ धात्रीच्छायासु यः कुर्यात्पिंडदानं नृपोत्तम ॥ तृप्तिं प्रयांति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः ॥ १८ ॥ मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे च नृपसत्तम ॥ धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिः स्वयम् ॥ १९ ॥ धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ॥ यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २० ॥ धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदलमिश्रितैः ॥ जलैः स्नाति नरस्तस्य गंगास्नानफलं स्मृतम् ॥ २१ ॥

स्थित हैं वह मनुष्य जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २० ॥ आमले तुलसीदल इनको जलमें मिलाकर जो स्नान करता है उसको गंगास्नानका फल मिलता है ॥ २१ ॥

मनुष्य आमरेके पत्ते और फलोंसे देवताओंका पूजन करै सुवर्णमणी और मोती इनसे जो पूजन है उसका फल मिलता है॥ २२ ॥ तीर्थ मुनि देवता यज्ञ ये सब कार्तिकके महीनेमें तुलाके सूर्यमें आमरेके वृक्षमें निवास करैं हैं॥ २३॥ जो पुरुष द्वादशीके दिन तुलसी-दल और कार्तिकमें आमरेको तोड़ता है वह अतिनिन्दित नरकनमें प्राप्त होय है॥ २४॥ आमरेके वृक्षकी छायामें बैठकर जो कार्तिकमें

देवार्चनं नरः कुर्याद्धात्रीपत्रैः फलैरपि॥ सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याप्नुयात्फलम्॥ २२॥ तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाः सर्वेऽपि कार्तिके॥ नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठंत्यर्के तुलाश्रिते॥ २३॥ द्वादश्यां तुलसी-पत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके॥ लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्॥ २४॥ धात्रीछायां समा-श्रित्य कार्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः॥ अन्नसंसर्गजं पापमाब्दं तस्य नश्यति॥ २५॥ धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्तिके पूजयेन्नरः॥ विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा॥ २६॥

भोजन करता है उसका अन्नके संसर्गसे पैदा हुआ वर्षदिनका पाप नष्ट होजाता है॥ २५॥ जो कार्तिकमासमें आमरेके वृक्षके नीचे बैठकर भगवान्का पूजन करता है उसको सब क्षेत्रोंमें विष्णुके पूजनका जो फल है सो मिलै है॥ २६॥

धात्री और तुलसी इनके माहात्म्यको चतुर्मुख ब्रह्माभी कहनेको समर्थ नहीं है जैसे कि विष्णुकी महिमाको कोई नहीं कहसकता है ॥ २७ ॥ धात्री और तुलसी इनके जन्मके कारणको जो भक्तिसे सुनै और सुनावै वह निष्पाप होकर अपने पुरुखानसमेत विमानमें बैठकर स्वर्गको चलो जाय है ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यकथनना-

धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः ॥ न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २७ ॥ धात्री-तुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ॥ विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पृथुरुवाच ॥ सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यं कथितं मम ॥ अत्याश्चर्यकरं सम्यक्तुलस्यास्तच्छ्रुतं मया ॥ १ ॥ यदूर्ज्जव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम् ॥ तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम् ॥ २ ॥

माष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पृथु बोला । हे ब्रह्मन्! इतिहाससमेत आश्चर्य करनेवाला तुलसीका माहात्म्य और व्रत मुझसे कहा सो मैंने सुना ॥ १ ॥ जो कार्तिकव्रत करनवारे पुरुषका फल है सो आपने कहा और फिर माहात्म्य कहो ये व्रत पहिले किसने किया ये वर्णन करो ॥ २ ॥

नारद बोले । सह्याचलपर्वतपर करवीरपुरमें धर्मका जाननेवाला धर्मदत्तनामक ब्राह्मण प्रसिद्ध होतभयो ॥ ३ ॥ वह सदा विष्णुका व्रत और पूजन करता द्वादशाक्षर मंत्रका जप करता और अतिथिसत्कार करता था ॥ ४ ॥ एकसमय कार्तिकमासमें एक पहर रात्रि बाकी रही तब हरिके जागरणकेलिये भगवान्के मंदिरमें जातभयो ॥ ५ ॥ भगवान्के पूजनकी सामिग्री लेकर जाते भये उस ब्राह्मणने आईहुई

नारद उवाच ॥ आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ॥ ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः ॥ ३ ॥ विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतः सदा ॥ द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥ ४ ॥ कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥ रात्र्यां तुर्य्यांशशेषायां जगाम हरिमंदिरम् ॥ ५ ॥ हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ॥ तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ॥ ६ ॥ वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना ॥ दिगंबरा शुष्कमांसा लंबोष्ठी घर्घरस्वना ॥ ७ ॥ तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कंपितावयवस्तदा ॥ पूजोपकरणैः सर्वैः पयोमिश्रैराहनद्भयात् ॥ ८ ॥

एक भयंकर राक्षसी देखी ॥ ६ ॥ टेढ़ी जिसकी डाढ़ है जीभ जिसकी चररही है भीतरको गढ़े हुए लाल नेत्र हैं लंबा होठ है नंगी है मांस सूखा हुआ है घर्घर २ शब्द करती है ॥ ७ ॥ उसको देखकर वह भयभीत होगया शरीर कांपने लगा भयके मारे पूजाकी सामिग्री और

जलसे उसको मारने लगा ॥ ८ ॥ भगवान्‌का स्मरण करके तुलसीके जलसे जो उसको मारा सो उसके सब पाप नष्ट होगये ॥ ९ ॥ फिर वह पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे प्राप्त हुई अपनी दशाको याद करके ब्राह्मणको दंडवत करके बोली ॥ १० ॥ कलहा बोली । पहिले कर्मके फलसे इस दशाको प्राप्त भई हूं. हे विप्र ! अब फिर उत्तम गतिको कैसे प्राप्त होंऊ ॥ ११ ॥ नारद बोले । नम्र होकर अच्छीतरह

संस्मृत्य यद्धरेनाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥ सोऽहनत्पातकं तस्यास्तस्मात्सर्वमगाल्लयम् ॥ ९ ॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम्॥ स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ॥ १० ॥ कलहोवाच ॥ पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम् ॥ तत्कथं तु पुनर्विप्र प्राप्नुयामुत्तमां गतिम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत् ॥ अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥ कुतस्त्या का च किंशीला तत्सव कथयस्व मे ॥ १३ ॥

अपने कर्मको कहती हुई कलहाको देख अति विस्मित होकर ब्राह्मण बोलत भयो ॥ १२ ॥ धर्मदत्त बोला । किस कर्मके फलसे यह तेरी दशा भई है और कहांकी है कौन है कैसा तेरा स्वभाव है यह हमसे कह ॥ १३ ॥

कलहा बोली । सौराष्ट्र नगरमें एक भिक्षुनामक ब्राह्मण होत भयो, उसकी स्त्री कलहा नामक अति कठोर स्वभाववाली मैं हूँ ॥ १४ ॥ मैंने वचनसेभी कभी अपने स्वामीका कल्याण नहीं किया और कभी मीठे पदार्थभी नहीं दिये और पतिसे विरुद्ध काम करती रही ॥ १५ ॥ मोकूं कलह प्यारी लगतीही ये बात जानकर मेरे पतिका चित्त डरता रहता फिर मेरे पतिने दूसरा विवाह करनेका विचार किया

कलहोवाच ॥ सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुर्नामाभवद्द्विजः ॥ तस्याहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा ॥ १४ ॥ न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसापि शुभं कृतम् ॥ नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनशीलया ॥ १५ ॥ कलहप्रियया नित्यं भयोद्विग्नमना यदा ॥ परिणेतुं तदान्यां तु पतिश्चक्रे मतिं मम ॥ १६ ॥ ततो गरं समादाय प्राणांस्त्यक्त्वा मृतिं गता ॥ अथ बद्धा बध्यमानां मां निन्युर्यमकिंकराः ॥ १७ ॥ यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ यम उवाच ॥ अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त विलोकय ॥ १८ ॥

॥ १६ ॥ फिर मैंने विष खाकर प्राण त्याग दिये फिर यमके दूत मोकूं बांधकर लेगये ॥ १७ ॥ यमराज मोकूं देखकर चित्रगुप्तसे पूंछत भये । यमराज बोले । हे चित्रगुप्त इसने क्या कर्म किया है ये देखो ॥ १८ ॥

इसने जो बुरा या भला कर्म किया होय उसका फल पावै । कलहा बोली । चित्रगुप्त धमकाकर मुझसे वचन बोला । चित्रगुप्त बोला । इसने कोई शुभ कर्म नहीं किया ये आप तौ मीठे पदार्थ भोजन करती, और पतिको नहीं देती ॥ २० ॥ इससे ये बगुली योनीमें अपनी विष्ठाको खाकर रहै ये अपने पतिसे द्वेष करती और कलह करतीथी ॥ २१ ॥ इससे ये विष्ठा खानेवाली शूकर योनिमें रहै यह सदा

प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ कलहोवाच ॥ चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः ॥ १९ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते ॥ मिष्टान्नं भुंजमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् ॥ २० ॥ अतश्च वल्गुनीयोन्यां स्वविष्ठादी च तिष्ठतु ॥ भर्तुर्द्वेषकरी ह्येषा नित्यं कलहकारिणी ॥ २१ ॥ विष्ठादा शूकरीयोनौ तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे ॥ पाकभांडे सदा भुंक्ते भुंक्ते चैका यतस्ततः ॥ २२ ॥ तस्मादेषा बिडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी ॥ भर्त्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ॥ २३ ॥

पाकपात्र वटलाआदिमें भोजन करती थी और अकेलेही खाती थी ॥ २२ ॥ इससे पैदा हुए बच्चोंको खानेवाली बिडालयोनिको प्राप्त होय इसने पतिके ऊपर विष खाकर आत्मघात किया ॥ २३ ॥

इससे यह अतिनिन्दित प्रेतयोनिमें प्राप्त होय और अपने दूतोंकेद्वारा इसको मारवाड़में भेज दो ॥ २४ ॥ वहां ये बहुत समयतक प्रेत-योनिको भोगै इसकेबाद अशुभकर्म करनेवारी ये तीनों योनियोंको भोगै ॥ २५ ॥ कलहा बोली । सो मैं पांचसौ वर्षतक प्रेतयोनिमें रही अपने कर्मसे नित्य भूंक प्याससे दुःखी रहती ॥२६॥ भूंक प्याससे पीडित होकर वैश्योंके देहमें प्रविष्ट होकर मैं दक्षिणदिशामें कृष्णा

तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेषातिनिंदिता ॥ अतश्चैव मरौ देशे प्रापितव्या भटैस्तव ॥ २४ ॥ तत्र प्रेत-शरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥ ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥ २५ ॥ कलहोवाच ॥ साहं पंचशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता नित्यं दुःखिता स्वेन कर्मणा ॥ २६ ॥ क्षुत्तृ-ड्भ्यां पीडिताविश्य शरीरं वणिजां त्वहम् ॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च संगमम् ॥ २७ ॥ तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ॥ शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम् ॥ २८ ॥ ततः क्षुत्क्षा-मया हि त्वं गच्छन्दृष्टो द्विजोत्तम ॥ त्वद्धस्ततुलसीनीरसंसर्गगतपापया ॥ २९ ॥

और वेणी नदियोंके संगमपर आई ॥ २७ ॥ जब मैं नदीके तीरपर पहुंची तब नदीसे शिव और विष्णुके गणने मुझको दूर निकालदी ॥२८॥ फिर भूंकसे व्याकुल भई मैंने तुमको देखा तुह्मारे हाथसे तुलसी मिलाहुआ जल जो ऊपर गिरा उससे पाप दूर हो गयो ॥ २९ ॥

हे विप्रेन्द्र ! ऐसी कृपा करो जिससे होनीवाली तीन योनियोंसे और इस योनिसे मुक्त हो जाऊं ॥ ३० ॥ ब्राह्मण इस प्रकार कलहाका वचन सुनकर कर्मोंके फलसे प्राप्त हुई उस ग्लानिके देखनेसे उसको दया आयगई सो अपने मनमें बहुत देरतक विचार करके ये वचन बोला ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ धर्मदत्त बोला । तीर्थ दान

तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमवाप्नुयाम् ॥ योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥ ३० ॥ इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभवविस्मयदुःखयुक्तः ॥ तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्ति-ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ विलयं यांति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः ॥ प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥ १ ॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ॥ नैव निर्वृत्तिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥

व्रत करनेसे पाप दूर होजाते हैं परन्तु तू प्रेतयोनिमें स्थित है इसलिये तुझको अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तेरी इस ग्लानिको देखकर मेरा मन दुःखी है तेरा दुःखसे उद्धार किये विना मेरा मन प्रसन्न नहीं होय है ॥ २ ॥

तीन योनियोंको देनेवाला तेरा यह पाप बडा उग्र है थोडे पुण्योंसे ये क्षीण नहीं होगा प्रेतयोनि बडी निन्दित है ॥ ३ ॥ इससे इस जन्ममें जो मैंने कार्तिकका व्रत किया है इसके पुण्यके आधे फलको मैं देताहूँ तू श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हो ॥ ४ ॥ यज्ञ दान और तीर्थ ये कार्तिकके व्रतके पुण्यकी बराबरी सर्वथा नहीं करसके हैं ॥ ५ ॥ नारदजी बोले । यह कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर मंत्रको सुनाकर जो

पातकं च तवात्युग्रं योनित्रयविपाकदम् ॥ नैवाल्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥ ३ ॥ तस्मा-दाजन्मजानितं यन्मया कार्तिकव्रतम् ॥ तत्पुण्यस्यार्द्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥ ४ ॥ कार्तिक-व्रतपुण्येन न साम्यं यांति सर्वथा ॥ यज्ञदानानि तीर्थानि दत्तान्यपि यतो ध्रुवम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् ॥ तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥ ६ ॥ ताव-त्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेंदिरा ॥ ७ ॥

तुलसी मिला हुआ जल उसके ऊपर छिडका ॥ ६ ॥ सोई प्रेतयोनि छूटगई जलती हुई अग्निके समान दिव्यरूप धारण करके लक्ष्मीके समान सुंदर होतमई ॥ ७ ॥

फिर उसने पृथ्वीपर ब्राम्हणको प्रणाम करी और हर्षसे गद गद वाणी होकर बोली ॥ ८ ॥ कलहा बोली । हे द्विजश्रेष्ठ ! तेरी कृपासे मैं नरकसे छूटगई पापोंके समूहमें डूबी भई मैं हूँ मुझको आप निश्चय नौकारूप हुएहो ॥ ९ ॥ नारद बोले । इसप्रकार वह कहरही थी इतनेहीमें विष्णुके रूपको धारण करनेवाले देवताओंसे युक्त आकाशसे आते हुए प्रकाशमान विमानको देखतभई ॥ १० ॥

ततः सा दंडवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम् ॥ उवाच सा तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥८॥ कलहोवाच ॥ त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ निर्मुक्ता निरयादहम् ॥ पापौघमज्जमानायास्त्वं नौर्भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शायांतमंबरात् ॥ विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥ १० ॥ अथ सा तद्विमानाग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामधिरोपिता ॥पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता ॥ ११ ॥ तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयम् ॥ पपात दंडवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ विष्णुरूपिणौ ॥ १२ ॥

पुण्यशील और सुशील नामके दो विष्णुके द्वारपालोंने वह कलहा उस श्रेष्ठ विमानमें बैठार दीनी और अप्सरा उसकी सेवा करने लगी ॥ ११ ॥ तब धर्मदत्तने उस विमानको विस्मयपूर्वक देखा विष्णुरूपी उन गणोंको देखकर पृथ्वीमें प्रणाम किया ॥ १२ ॥

पुण्यशील और सुशीलने उस ब्राह्मणको उठाकर उसकी प्रशंसा करके धर्मयुक्त वचन कहा ॥ १३ ॥ गण बोले । हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तुम बहुत अच्छे हो विष्णुकी भक्तिमें सदा लगे रहते हो दीनोंके ऊपर कृपा करनेवाले हो धर्मज्ञ हो विष्णुके व्रतमें तत्पर हो ॥ १४ ॥ बालकपनसे लेकर जो उत्तम कार्तिकका व्रत किया उसका आधा फल देनेसे इसके पूर्वजन्मका कियाहुया पाप नष्ट होगया ॥ १५ ॥

पुण्यशीलसुशीलौ च तमुत्थाप्यानतं द्विजम् ॥ समभ्यनंदयन्वाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम् ॥ १३ ॥ गणावूचतुः ॥ साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्त्वं विष्णुरतः सदा ॥ दीनानुकंपी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥ १४ ॥ आबालत्वाच्छुभं त्वेतद्यत्त्वया कार्तिकव्रतम् ॥ कृतं तस्यार्द्धदानेन यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥ १५ ॥ जन्मांतरशतोद्भूतं पापं तद्विलयं गतम् ॥ स्नानादेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥ १६ ॥ हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थितम् ॥ वैकुंठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् ॥ १७ ॥

स्नानमात्रसेही इसके सौ जन्मोंका पाप नष्ट होगया ॥ १६ ॥ और हरिका जागरणादि जो तुमने किया इससे यह विमान मिला नाना-प्रकारके जिसमें भोग हैं ऐसे वैकुंठको ये जारही है ॥ १७ ॥

कार्तिकमें जो तुमने दीपदान किया इसके पुण्यसे इसको यह दिव्यरूप मिला और तुलसीके पूजनसे और कार्तिकके व्रतसे ॥ १८ ॥ जो तुमने इसको पुण्य दिया इससे ये विष्णुके समीप जाती है और तुमभी इस जन्मके अंतमें दोनों स्त्रियोंको साथ लेकर वैकुंठको जाओगे ॥ १९ ॥ विष्णुके वैकुंठमें भगवान्‌के समीप सरूपता नामक मुक्तिको प्राप्त होउगे वेही धन्य हैं वेही कृत कृत्य हैं और

दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजसां रूपमास्थिता ॥ तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः ॥ १८ ॥ विष्णोः संनिधिगा जाता त्वया दत्ते कृपानिधे ॥ त्वमप्यस्य भवस्यांते भार्याभ्यां सह यास्यसि ॥ १९ ॥ वैकुंठभवनं विष्णोः सांनिध्यं च सरूपताम् ॥ ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलो भवः ॥ २० ॥ यैर्भक्त्याराधितो विष्णुर्धर्मदत्त त्वया यथा ॥ सम्यगाराधितो विष्णुः किन्न यच्छाति देहिनाम् ॥ २१ ॥ औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा ॥ यन्नामस्मरणादेव देहिनो यांति सद्गतिम् ॥ २२ ॥

उन्हीका जन्म सफल है ॥ २० ॥ जिन्होंने भगवान्‌का तुह्मारी तरह आराधन किया है। विष्णुका भलेप्रकारसे आराधन करनेसे मनुष्योंको कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ २१ ॥ उत्तानपादके पुत्र ध्रुवको जिन्होंने निश्चल पदपर स्थापित कर दिया। जिनका नाम लेनेसे मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

ग्राहकरके पकडा हुआ हाथी जिनके नामके स्मरणसे मुक्त होकर भगवानके समीप जातभयो और जय उसका नाम हुआ ॥ २३ ॥ तुमने विष्णुभगवानको जो आराधन कियो याते कई हजार वर्षतक दोनों स्त्रियोंसमेत भगवानके समीप निवास करोगे ॥ २४ ॥ फिर पुण्य क्षीण होनेपर पृथ्वीपर आओगे और सूर्यवंशमें जन्म लेकर प्रसिद्ध राजा होओगे ॥ २५ ॥ दशरथ नाम होगा वहांभी ये दोनों

ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा ॥ विमुक्तः सन्निधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः ॥ २३ ॥ यत-स्त्वयार्चितोविष्णुस्तत्सांनिध्यं प्रयास्यसि ॥ बह्वन्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥ २४ ॥ ततः पुण्यक्षये जाते यदा यास्यसि भूतले ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि ॥ २५ ॥ नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः ॥ तृतीययानया चापि या ते पुण्यार्द्धभागिनी ॥ २६ ॥ तत्रापि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले ॥ आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्यामरकार्यंकृत् ॥ २७ ॥

स्त्रियां तुम्हारी होंयगी और तीसरी यह कलहा जिसको तुमने आधा पुण्य दिया है यह तुम्हारी स्त्री होयगी ॥ २६ ॥ वहांभी विष्णु-भगवान् पृथ्वीपर आकर आपके समीप रहेंगे और तुह्मारे पुत्र होकर देवताओंका कार्य करेंगे ॥ २७ ॥

विष्णुको प्रसन्न करनेवाले तुह्मारे इस कार्तिकके व्रतसे यज्ञ दान तीर्थ ये कोई अधिक नहीं है ॥ २८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! तू धन्य है जो तुमने जगद्गुरुके प्रसन्न करनेवाला व्रत किया है और व्रतके आधे फलके मिलनेसे ये कलहा विष्णुभगवान्के लोकको प्राप्त होती है हम लेजा-रहे हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णलालकृते भाषाटीकायां विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारद बोले । इस

तवोर्जस्य व्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात् ॥ न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २८ ॥ धन्योऽसि विप्रेन्द्र यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ॥ यदर्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ आराधयंति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ॥ यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥

प्रकार वचन सुनकर धर्मदत्त विस्मित होकर पृथ्वीमें प्रणाम करके ये वचन बोला ॥ १ ॥ धर्मदत्त बोला । सब मनुष्य यज्ञ दान तीर्थ तप इनसे भक्तोंकी पीडा नाश करनवाले विष्णुका आराधन विधिपूर्वक करते हैं ॥ २ ॥

उनमें विष्णुको प्रसन्न करनेवाला और सामीप्य देनेवाला ऐसा कोई है जिसके करनेसे सब यज्ञादिक सफल होंजाय ॥ ३ ॥ गण बोले । हे विप्र ! तुमने अच्छा प्रश्न किया इतिहाससमेत जो प्राचीन वृत्तान्त है वह हम कहते हैं एकाग्र मन होकर सुनो ॥ ४ ॥ कांचीपुरीमें चोलनामक चक्रवर्ती राजा होत भयो उसकेही नामसे चोलदेश प्रसिद्ध होतभये ॥ ५ ॥ उसके पृथ्वीपर राज्य करतेसमय कोई आदमी

विष्णुप्रीतिकरं तेषां किंचित्सांनिध्यकारकम् ॥ यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवंति हि ॥ ३ ॥
गणा ऊचुः ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ सेतिहासं पुरावृत्तं कथ्यमानं मयाऽनघ ॥ ४ ॥
कांचीपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत् ॥ यस्याख्ययैव ते देशाश्चोला इति प्रथां गताः ॥ ५ ॥
यस्मिञ्छासति भूचक्रं दरिद्रो वापि दुःखितः ॥ पापबुद्धिः सरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥ ६ ॥ यस्याप्यनंतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ ॥ सुवर्णयूपैश्शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥ ७ ॥

दरिद्री दुःखी वा पापबुद्धि वा रोगी नहीं था ॥ ६ ॥ असंख्य यज्ञ करनवारे उस राजा चोलके सोनेके यज्ञस्तंभसे ताम्रपर्णी नदीके दोनों किनारे चैत्ररथ नामक कुबेरके वनकीतरह शोभाको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥

एकसमय वह राजा अनंतशयन नामक स्थानको जात भयो जहां कि योगमायाका आश्रय लेकर भगवान् शेषशय्यापर शयन करें हैं ॥ ८ ॥ वहां लक्ष्मीके पति भगवानको मोती और सुंदर सुवर्णके फूलोंसे विधिपूर्वक पूजन करत भयो ॥ ९ ॥ पृथ्वीमें दंडवत प्रणाम करके वहां बैठ गयो और वहां भगवान्के समीप आये भये ब्राह्मणको देखत भयो ॥ १० ॥ भगवानके पूजनकेलिये हांथमें

स कदाचिदयाद्राजा ह्यनंतशयनं द्विज ॥ यत्रासौ जगतां नाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥ ८ ॥ तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधिवन्नृपः ॥ मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥ ९ ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै ॥ तावद्ब्राह्मणमायांतमपश्यद्देवसन्निधौ ॥ १० ॥ देवार्चनार्थं पाणौ तु तुलस्युदकधारिणम् ॥ स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥ ११ ॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत् ॥ विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमंजरीदलैः ॥ १२ ॥

तुलसी और जल लिये था कांचीपुरीमें रहतो हो और विष्णुदास वाको नाम हो ॥ ११ ॥ उस ब्राह्मणने वहां आकर विष्णुसूक्तसे भगवानको स्नान कराये और तुलसीपत्रसे पूजन किया ॥ १२ ॥

पहिले वहां उस राजाने आकर रत्नोंसे भगवान्‌को पूजन कियो उनके ऊपर इस ब्राह्मणने तुलसीदल चढाये इससे वे रत्न ढकगये यह देखकर राजा कुपित होकर बोलो ॥ १३ ॥ चोल बोला । यहां माणिक और सुवर्णसे मैंने शोभायमान पूजा की है विष्णुदास वह तुलसीपत्रोंसे तुमने क्यों ढकदीनी है ॥ १४ ॥ तू विष्णुकी भक्तिको नहीं जानता है ढोंगी है यह मैं जानूं हूं जो कि अत्यन्त शोभायुक्त

तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम् ॥ आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥ चोल उवाच ॥ माणिक्यस्वर्णपूजात्र शोभाढ्या या कृता मया ॥ विष्णुदास कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥ १४ ॥ विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतिर्मम ॥ यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥ १५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः ॥ राज्ञो गौरवमुल्लंघ्य जगाद वचनं तदा ॥ १६ ॥ विष्णुदास उवाच ॥ राजन् भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया ॥ कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥ १७ ॥

पूजाको ढकै है ॥ १५ ॥ इस वचनको सुनकर वह ब्राह्मण बहुत क्रोध करके राजाके गौरवको तुच्छ समझकर ये वचन बोला ॥ १६ ॥ विष्णुदास बोला । हे राजन् ! तू भक्तिको नहीं जानता है राज्यकी लक्ष्मीका तुझको घमंड है तूने पहिले कितना विष्णुका व्रत किया

यह कह ॥ १७ ॥ गण बोले । ब्राह्मणके इस वचनको सुनकर और हंसकर वह राजा विष्णुदाससे गर्वसहित वचन कहत भयो ॥ १८ ॥ राजा बोला ॥ हे विप्र! जो तू भक्तिका गर्व करके इसप्रकार कहै है तो दरिद्री और निर्धन जो तू है तेरी भक्ति कितनी ॥ १९ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेवाले यज्ञदानादि तैंने नहीं किये और न कभी पहिले तैंने कोई मन्दिरही बनवाया ॥ २० ॥ ऐसा जो तू है

गणावूचतुः ॥ तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः ॥ विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥ १८ ॥
राजोवाच ॥ इत्थं वदसि चेद्विप्र विष्णुभक्त्यातिगर्वितः ॥ भक्तिस्ते कियती विप्र दरिद्रस्याधनस्य च ॥ १९ ॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् ॥ नापि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित ॥ २० ॥
ईदृशस्यापि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तितः ॥ तच्छृण्वंतु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाद्य गमिष्यति ॥ पश्यंतु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यंति चावयोः ॥ २२ ॥

तुझको ये भक्तिका घमंड है सब ब्राह्मण आज मेरे वचनको सुनो ॥ २१ ॥ आज सब मनुष्य देखते रहो कि विष्णुभगवान् साक्षात मुझको दर्शन दें कि इसको इसीमें हमारी दोनोंकी भक्ति मालूम हो जायगी ॥ २२ ॥

गण बोले ॥ यह कहकर वह राजा अपने राजगृहमें जात भयो मङ्गलऋषिको आचार्य बना वैष्णव यज्ञको आरंभ करत भयो ॥ २३ ॥ वह यज्ञ कैसा है जिसमें बहुतसे ऋषि विराजमान हैं बहुतसा अन्न हैं बहुत दक्षिणा है बहुतसी संपत्ति है ये व्रत गयाक्षेत्रमें किया था ॥ २४ ॥ विष्णुदासभी उसी मंदिरमें ठहरा रहा और विष्णुको प्रसन्न करनेवाले नियमोंका पालन करने लगा ॥ २५ ॥ अच्छी तरहसे माघ

गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा ॥ आरेभे वैष्णवं सत्रं कृत्वाचार्यं स मुद्गलम् ॥ २३ ॥ ऋषिसंघसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ॥ यद्व्रतं च कृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत ॥ २४ ॥ विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ॥ यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्ज्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् ॥ एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्गीतनृत्यादिमंगलैः ॥ नित्यं विष्णोस्तदा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत ॥ २७ ॥

और कार्तिकका व्रत किया तुलसीका वन लगाया और एकादशीके दिन द्वादशाक्षरमंत्रसे जप किया ॥ २६ ॥ षोड़श उपचारसे और नृत्यगीतआदि मंगलोंसे नित्य विष्णुकी पूजा और इन व्रतोंको करने लगा ॥ २७ ॥

चलतेमें भोजनमें शयनमें सदा विष्णुको स्मरण करत भयो और समानदृष्टि होकर सब प्राणियोंके बीच विष्णुको देखत भयो ॥ २८ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये माघ कार्तिकके विशेष नियमको करत भयो और उनके उद्यापनभी किये ॥ २९ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीके पति भगवान्‌का आराधन करते और सब इन्द्रियोंके कर्म भगवानमें लगादिये और व्रतमें लगेहुए चोलेश्वर और विष्णुदासको आराधन

नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुंजन्स्वपञ्छ्वसन् ॥ सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघ-कार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समारा-धयतोः श्रियः पतिं तयोस्तु चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ आराधयन्कालबहून्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेंद्रिय-कर्मणोस्तदा ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ गणावूचतुः ॥ कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विजः ॥ सूपकर्माकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥

करते बहुत समय व्यतीत होगया ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ गण बोले ॥ एकसमय विष्णुदास ब्राह्मण नित्यकर्म करके रसोई करतभयो उस अन्नको कोई मनुष्य छिपकर चुरा लेगया ॥ १ ॥

रसोईको वहां न देखकर फिर वह रसोई नहीं करत भयो क्योंकि रसोई फिर करनेमें सायंकालकी पूजामें व्रतमें विघ्न हो जायगा ॥ २ ॥ दूसरे दिन फिर रसोई तैयार करके जो भगवान्‌के भोगकी तैयारी की इतनेहीमें कोई छिपकर फिर चुरा लेगया ॥ ३ ॥ इसप्रकार सात दिनतक कोई उसकी रसोई चुराकर लेगया फिर विस्मययुक्त होकर अपने मनमें विचारता भयो ॥ ४ ॥ ये बडे आश्चर्यकी बात है कि

तमदृष्ट्वाप्यसो पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा ॥ सायंकालार्चनस्यासौ व्रतभंगभयाद्द्विजः ॥ २ ॥ द्वितीयेऽह्नि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे ॥ उपहारार्पणं कर्तुं तावत्कोऽप्यहरत्पुनः ॥ ३ ॥ एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप ॥ ततः सविस्मयः सोऽथ मनस्येवं विचार्य च ॥ ४ ॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ॥ क्षेत्रं संन्यासिनः स्थान न त्याज्यं मम सर्वथा ॥ ५ ॥ पुनः पाक विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया ॥ सायंकालार्चनं चैतत्परित्याज्यं कथं भवेत् ॥ ६ ॥

नित्य आयके मेरी रसोईको कौन हर लेजाता है यह क्षेत्र संन्यासीका स्थान है मैं सर्वथा इसका त्याग नहीं करूंगा ॥ ५ ॥ जो फिर रसोई करके मैं भोजन करूं तौ सायंकालके पूजनमें बाधा पड़ती है वह पूजन कैसे छोड़ा जाय ॥ ६ ॥

यदि पाक बनाकर उसीसमय भोजन करूं तो येभी उचित नहीं है क्योंकि भगवान्के भोग धरेविना वैष्णावोंको भोजन न करना चाहिये ॥ ७ ॥ मैंने सात दिनसे उपवास कर रक्खा है व्रत धारण करके यहां बैठा हूँ आज भलीभांति पाककी रक्षा करूंगा ॥ ८ ॥ इसप्रकार रसोई बनाकर ये छिपकर खड़ा रहा इतनेहीमें पाक चुरानेकेलिये खड़े हुए चांडालको देखा ॥ ९ ॥ भूंकसे थकाहुआ दुःखी जिसका मुख है

यदि पाकं विधायैव भोक्तव्यं वै मया न तत् ॥ अनिवेद्य हरेः सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥ ७ ॥ उपोषितो- ऽहं सप्ताहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ॥ अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्यास्य करोम्यहम् ॥ ८ ॥ इति पाकं विधा- यासौ तत्रैवालक्षितः स्थितः ॥ तावद्ददर्श चांडालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥ क्षुत्क्षामं दीनवदनम- स्थिचर्मावशेषितम् ॥ तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपया खिन्नमानसः ॥ १० ॥ विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यधावत ॥ कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाण भोः ॥ ११ ॥

जल और चाम जिसके शरीरमें बाकी है उसको देखकर ब्राह्मण दुःखी हुआ और दया होआई ॥ १० ॥ उस अन्न लेंजानेवालेको देखकर ब्राह्मण बोला ठहर जा मूखा क्यों खाता है घी लेजा छुपड़के खा ॥ ११ ॥

ऐसे कहते हुए और आते हुए ब्राह्मणको देखकर उसके डरके मारे दौड़ा और गिरपड़ा मूर्छा आगई ॥१२॥ वह ब्राह्मण डरेहुए और मूर्छित चांडालको देखकर जल्दी आकर वस्त्रसे हवा करत भयो ॥१३॥ इसके बाद वह उठकर खड़ा हुआ तो विष्णुदासको शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले नारायणका दर्शन हुआ ॥ १४॥ पीले वस्त्र धारण किये हैं चार भुजा हैं लक्ष्मीका चिन्ह है किरीट पहिने हैं अलसीके फूलके

इत्थं ब्रुवंतं विप्राग्र्यमायांतं स विलोक्य च ॥ वेगाद धावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपातह ॥ १२ ॥ भीतं संमूर्च्छितं दृष्ट्वा चांडालं स द्विजोत्तमः ॥ वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रांतैरवीजयत् ॥ १३ ॥ अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् ॥ साक्षान्नारायणं देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥ पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्सांकं किरीटिनम् ॥ अतसीपुष्पसंकाशं कौस्तुभोरस्थलं विभुम् ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा सात्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः ॥ स्तोतुं चापि नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥ १६ ॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा ॥ गंधर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च नन्रतुर्मुदा ॥ १७ ॥

समान प्रकाशमान हैं कौस्तुभमणिको वक्षस्थलमें धारण कररहे हैं ॥ १५ ॥ सात्विक भावोंसे युक्त वह ब्राह्मण उनको देखकर स्तुति और नमस्कार करनेकेलिये समर्थ न होत भयो ॥१६॥ अब इन्द्रादिक देवता वहां आतेभये गंधर्व और अप्सराये नाचन गायन लगीं ॥१७॥

वह स्थान सैंकड़ों विमानोंसे और देवता और ऋषिगणोंसे भर गया गीत और बाजेनका शब्द होने लगा ॥ १८ ॥ फिर विष्णुभगवानने सात्विक व्रतवाले अपने भक्तका आलिंगन किया और स्वरूप उसको देकर वैकुंठको लेजात भये ॥ १९ ॥ सुंदर विमानमें बैठेहुए विष्णुके समीप जाते हुए विष्णुदासको दीक्षायुक्त चोलराजने देखा ॥ २० ॥ वैकुंठलोकको जाते भये विष्णुको

विमानशतसंकीर्णं देवर्षिगणसंकुलम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषं तत्स्थानमभवत्तदा ॥ १८ ॥ ततो विष्णुः समालिंग्य स्वभक्तं सात्विकव्रतम् ॥ सारूप्यमात्मनो दत्त्वा नयद्वैकुंठमंदिरम् ॥ १९ ॥ विमानवर-संस्थं तं गच्छंतं विष्णुसन्निधिम् ॥ दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥ २० ॥ वैकुंठभवनं यांतं विष्णुदासं विलोक्य सः ॥ स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥ चोल उवाच ॥ यत्स्पर्द्धया मया चैतद्यज्ञदानादिकं कृतम् ॥ स विष्णुरूपधृग्विप्रो याति वैकुंठमंदिरम् ॥ २२ ॥

देखकर अपने गुरु मुद्गलको वेगसे बुलाकर ये वचन बोला ॥ २१ ॥ चोल बोला । जिसकी स्पर्धासे मैंने यह दानादिक किया वह विष्णुरूप धारण करनेवाला ब्राह्मण वैकुंठको जारहा है ॥ २२ ॥

दीक्षायुक्त जो मैं हूँ मैंने इस वैष्णवक्षेत्रमें अग्निमें अच्छीतरह हवन किया और दानादिकसे ब्राह्मणोंका मन प्रसन्न किया ॥ २३ ॥ आजतकभी विष्णुभगवान् मोसें प्रसन्न नहीं भये विष्णुदासकी भक्तिसेही भगवान्ने उसको साक्षात्कार दिया ॥ २४ ॥ इसलिये दानसे और यज्ञसे विष्णु प्रसन्न नहीं होते हैं भगवान्के दर्शनमें भक्तिही परम कारण है ॥ २५ ॥ गण बोले । यह कहकर राजाने अपना भानजा

दीक्षितेन मया सम्यक्क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे मया ॥ हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥ २३ ॥
नैवाद्यापि स मे विष्णुः प्रसन्नो जायते ध्रुवम् ॥ विष्णुदासस्य भक्त्यैव साक्षात्कारं ददौ हरिः ॥ २४ ॥
तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति ॥ भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥ २५ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वमभ्यषिंचन्नृपासने ॥ आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः ॥ २६ ॥
तस्मादद्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः ॥ स्वस्रेया एव जायंते तत्कृतावधिवर्त्तिनः ॥ २७ ॥

गद्दीपर बैठा दिया और वह बालकपनहीसे यज्ञकी दीक्षामें रहा इसीसे उसके कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ २६ ॥ इससे अबतकभी उसके देशमें चोलराजाकी कीहुई अवधिपर चलनेवाले भानजेही राज्यके अधिकारी होते हैं ॥ २७ ॥

फिर यज्ञशालामें जाकर अग्निके कुंडके आगे स्थित होकर तीनबार विष्णुभगवान्‌को ऊंचे स्वरसे संबोधन देकर बोला ॥ २८ ॥ हे विष्णो ! मन वाणी और कर्म इनसे स्थिर भक्ति दे यह कहकर सबके देखते २ अग्निमें कूद पड़ा ॥ २९ ॥ फिर मुद्गलने क्रोधसे अपनी शिखा उखाड गेरी इसीसे आजतक उसके गोत्रमें मुद्गल शिखाहीन होते हैं ॥ ३० ॥ इतनेहीमें कुंडकी अग्निमें विष्णु प्रकट होतभये

यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य वन्हिकुंडाग्रतः स्थितः ॥ त्रिरुच्चैर्व्याजहाराशु विष्णुं संबोधयंस्तदा ॥ २८ ॥
विष्णो भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ इत्युक्त्वा सोऽपतद्वन्हौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ २९ ॥
मुद्गलस्तु ततः क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम् ॥ ततस्त्वद्यापि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखाभवन् ॥ ३० ॥
तावदाविरभूद्विष्णुः कुंडाग्नौ भक्तवत्सलः ॥ तमालिंग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३१ ॥ तमा-
लिंग्यात्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुंठमंदिरम् ॥ तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः ॥ ३२ ॥

भक्तवत्सल अच्युतने उसको आलिंगन करके श्रेष्ठ विमानमें चढा लिया ॥ ३१ ॥ उसको छातीसे लगाकर अपना स्वरूप देकर उसको संग लेकर देवतानसमेत वैकुंठको चलेगये ॥ ३२ ॥

जो विष्णुदास हैं उसका नाम पुण्यशील हो गया और जो चोलराजा है सो सुशीलनामक हो गया ये वरावर रूपवाले दोनों भगवान्ने द्वारपाल करलिये ॥ ३३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ धर्मदत्त बोला । जय और विजय ये दोनों भगवान्के द्वारपाल मैंने सुने है उननें पहिले क्या पुण्य किया जिससे विष्णुकेरूपको धारण करनेवाले होत भये

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ॥ एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वास्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वास्थौ श्रुतौ मया ॥ किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं यस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ तृणबिंदोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ॥ कर्दमस्य तु दृष्टेस्तु पुत्रौ द्वौ संबभूवतुः ॥ २ ॥ ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चेति नामतः ॥ तस्यामेवाभवत्पश्चात्कपिलो योगकर्मवित् ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ गण बोले। हे द्विज ! तृणबिन्दुकी देवहूति नामक कन्यामें पहिले कर्दमजीकी दृष्टिसे दो पुत्र हुए ॥ २ ॥ बडेका नाम जय छोटेका नाम विजय हुआ उसी देवहूतिके कर्मयोगको जाननेवाले कपिलदेव हुए ॥ ३ ॥

जय और विजय ये सदा विष्णुकी भक्ति करनेवाले होत भये और भगवान्के बीचमेंही उनकी इन्द्रियां लगीं रहतीं और धर्मशील होतभये ॥ ४ ॥ नित्य अष्टाक्षरी विद्याका जप करते और विष्णुका व्रत करते उनके नित्यके पूजनमें विष्णु साक्षाद्दर्शन देत भये ॥ ५ ॥ कभी यज्ञकर्ममें मरुतनामक राजाने बुलाये यज्ञ करानेमें चतुर वे दोनों देवता और ऋषि इनसे पूजन कियेगये वहां जात भये

जयश्चविजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा ॥ तस्मिन्निष्ठेंद्रियग्रामौ धर्मशीलौ बभूवतुः ॥ ४ ॥ नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ॥ साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥ ५ ॥ मरुतेन कदाचिद्वावाहूतौ यज्ञकर्माणि ॥ जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥ जयस्तत्राभवद्ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् ॥ ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥ मरुतोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु ॥ तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ उस यज्ञमें जय तौ ब्रह्मा बने और विजय याजक भये फिर संपूर्ण यज्ञको पूरा किया ॥ ७ ॥ फिर मरुतने यज्ञका स्नान करके उन दोनोंको बहुत द्रव्य दिया उस धनको लेकर वे दोनों अपने आश्रमको जात भये ॥ ८ ॥

भगवान्के अलग पूजनके लिये और प्रसन्नताके लिये उस धनको बाटने लगे तब आपसमें स्पर्धा करत भये ॥ ९ ॥ जयने यह कहा कि दोनोंका समान भाग करना चाहिये और विजय बोला कि नहीं जो जिसको मिलगया वह उसीका है ॥ १० ॥ फिर जय अपने चित्तमें क्षोभित हो क्रोध करके विजयको शाप देत भयो कि द्रव्यको ग्रहण करके नहीं देता है इससे ग्राह हो जा ॥ ११ ॥ विजयने उस

यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ तदा मुनी ॥ तद्धनं विभजंतौ तु पस्पर्द्धाते परस्परम् ॥ ९ ॥ जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः ॥ विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य तत् ॥ १० ॥
ततोऽशपज्जयः क्रोधाद्विजयं क्षुब्धमानसः ॥ गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद्ग्राहो भवेति तम् ॥ ११ ॥
विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम् ॥ मदभ्रांतोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातंगतां व्रज ॥ १२ ॥
तत्तदार्चयतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् ॥ शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥ १३ ॥

शापको सुनकर जयको शाप दिया कि तूने मदसे भ्रांत होकर जो मुझे शाप दिया इससे तू हाथी हो जा ॥ १२ ॥ तब वे दोनों नित्यपूजनके समय भगवान्का दर्शन करके उनसे ये बोले और लक्ष्मीके पति भगवान्से शापकी निवृत्ति मांगते भये ॥ १३ ॥

जयविजय बोले। हम आपके भक्त हैं और ग्राह और हांथी योनिमें कैसे जाय इससे हे कृपासिंधो! इस शापको लौटा दीजिये ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले। कि मेरे भक्तोंका वचन कभी झूंठा न होगा और मैंभी उसको कभी नहीं लौट सकता ॥ १५ ॥ पहिले प्रह्लादका वचन सत्य करनेकेलिये खंभमें प्रकट हुआ फिर तैसेही अम्बरीषके वचनसे मैं निश्चय दशप्रकारसे प्रकट हुआ ॥ १६ ॥ इससे तुम

जयविजयावूचतुः ॥ भक्तावावां कथं देव ग्राहमातंगयोनिगौ ॥ भविष्यावः कृपासिंधो तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति ॥ मयापि नान्यथा कर्तुं शक्यते तत्कदाचन ॥ १५ ॥ प्रल्हादवचसा स्तम्भे ह्याविर्भूतो ह्यहं पुरा ॥ तथांबरीषवाक्येन जातोऽहं दशधा किल ॥ १६ ॥ तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयंकृतौ ॥ लभेतां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वांतर्दधे हरी ॥ १७ ॥ गणावूचतुः ॥ ततस्तौ ग्राहमातंगावभूतां गंडकीतटे ॥ जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥ १८ ॥

दोनों अपने किये हुए शापोंका अनुभव करके मेरे पदको फिर प्राप्त होउगे ये कहकर हरि अंतर्धान् होगये ॥ १७ ॥ गण बोले। फिर वे दोनों गंडकी नदीके तटपर ग्राह और मातंग होतभये इस योनिमेंभी इनको पूर्वजन्मकी याद बनीरही और भगवान्के व्रतमें लगे रहे ॥ १८ ॥

एक दिन वह हाथी कार्तिकीपूर्णिमाके दिन गंडकीमें स्नान करनेकेलिये गयो उस समय शापके कारणको याद करके ग्राहने उसका पैर पकड लिया ॥ १९॥ ग्राहकरके पकड़ा हुआ वह हांथी लक्ष्मीकेपति विष्णुका स्मरण करने लगा उसीसमय चक्र शंख गदाको धारण करनेवाले विष्णु प्रकट होतभये ॥ २० ॥ फिर भगवान्‌ने चक्रसे ग्राहको मारकर उन दोनोंका उद्धार किया और उन दोनोंको अपना स्वरूप देकर

कदाचित्स गजः स्नातुं कार्तिक्यां गंडकीं गतः ॥ तावज्जग्राह तं ग्राहः संस्मरञ्छापकारणम् ॥ १९ ॥
ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा ॥ तावदाविर्भवद्विष्णुः शंखचक्रगदाधरः ॥ २० ॥ त-
तस्तौ ग्राहमातंगौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ ॥ दत्त्वा च निजसारूप्यं वैकुंठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥ ततः
प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति स्मृतम् ॥ चक्रसंघर्षणाद्यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लांछिताः ॥ २२ ॥
ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा ॥ नित्यं विष्णुप्रियौ द्वास्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ॥ २३ ॥
अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः ॥ त्यक्त्वा मात्सर्यदंभौ हि भवस्व समदर्शनः ॥ २४ ॥

वैकुंठको लेजात भये ॥ २१ ॥ उसी दिनसे उस स्थानका नाम हरिक्षेत्र होगया चक्रके लगनेसे वहांके पत्थरोंमें चिन्ह होगये हैं ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मण ! जिनको तुमने पूंछा वे दोनों जयविजय संसारमें प्रसिद्ध हुए वे दोनों विष्णुके द्वारपाल हैं और प्यारे हैं ॥ २३ ॥ इससे हे धर्मज्ञ !

तूभी नित्य विष्णुके व्रतमें स्थित होकर मत्सरता और कपटको छोडकर समदर्शी हो जा ॥ २४ ॥ सदा तुला, मकर और मेषके सूर्यमें प्रातःकाल स्नान करो एकादशीका व्रत करो और तुलसीके वनका पालन करो ॥ २५ ॥ ब्राह्मण गौ और वैष्णव इनकी सदा सेवा करो मसूर, कांजी, बैगन इनका त्याग करो ॥ २६ ॥ इसी प्रकार हे धर्मदत्त ! देहान्त होनेपर तुमभी विष्णुके परमपदको प्राप्त होउगे

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव ॥ एकादशीव्रते निष्ठस्तुलसीवनपालकः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणा-
नपि गाश्चैव वैष्णवांश्च सदा भज ॥ मसूरिकामारनालंवृंताकान्यपि वै त्यज ॥ २६ ॥ एवं त्वमपिदेहांते
तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् ॥ २७ ॥ तवाजन्मव्रतादस्मा-
द्विष्णुसंतुष्टिकारकात् ॥ न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २८ ॥ धन्योऽसि विप्राग्र्य यतः
त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ॥ यदर्द्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २९ ॥

१९

जैसे कि विष्णुकी भक्तिसे हम प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ जन्मसे लेकर कियेगये विष्णुको प्रसन्न करनेवाले इस व्रतसे यज्ञ, दान, तीर्थ, ये कोई अधिक नहीं हैं ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो क्योंकि जगद्गुरु भगवानको प्रसन्न करनेवाला ये व्रत किया जिसके आधे फलको पाकर ये कलहा हमारे संग विष्णुलोकको जारही है ॥ २९ ॥

नारजी बोले । इसप्रकार धर्मदत्तसे कहकर और विमानमें बैठकर वे दोनों कलहासमेत वैकुंठको जातभये ॥ ३० ॥ वह धर्मदत्तभी विश्वासयुक्त हो उस व्रतमें स्थित होकर देहान्त होनेपर स्त्रियोंको साथ लेकर वैकुंठको जातभयो ॥ ३१ ॥ इस प्राचीन इतिहासको जो पुरुष सुनै और सुनावै वह जगद्गुरुकी कृपासे भगवान्के समीप पहुंचानेवाली भक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे

नारद उवाच ॥ इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपवेश्य विमानगौ ॥ तया कलहया सार्द्धं वैकुंठभवनं गतौ ॥ ३० ॥
धर्मदत्तोऽप्यसौ तात प्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः ॥ देहांते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्यगात् ॥ ३१ ॥
इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान् ॥ हरिसन्निधिकारिणीं मतिं लभते स कृपया जगद्गुरोः
॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पृथुरुवाच ॥ कृष्णावेण्यो-
स्तटात्तस्माच्छिवविष्णुगणैः पुरा ॥ वणिक्छरीरात्कलहा निरस्ता कथिता त्वया ॥ १ ॥

कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पृथु बोला । कृष्णावेणीके तटसे शिव और विष्णुके गणोंने वैश्यके शरीरसे कलहा निकाली ये अपने हमसे कही ॥ १ ॥

ये उन नदियोंका प्रभाव है अथवा उस क्षेत्रका हे धर्मज्ञ ! इसमें हमको बडा संदेह है हमसे कहो ॥ २ ॥ नारजी बोले । कृष्णा साक्षात कृष्णका शरीर है और वेणी शिवजीका स्वरूप है उनके संगमके प्रभावको चार मुखवाला ब्रह्माभी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ तौभी उनकी उत्पत्ति मैं कहूंगा उसको सुनो । पहिले चाक्षुष मन्वतरमें ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ रमणीक सह्याद्रिके शिखरपर यज्ञ करनेको तैयार भये

प्रभावोऽयं तयोर्नद्योः किंवा क्षेत्रस्य तस्य च ॥ तन्मे कथय धर्मज्ञ विस्मयोऽत्र महान्मम ॥ २ ॥
नारद उवाच ॥ कृष्णा कृष्णतनुः साक्षाद्वेण्या देवो महेश्वरः ॥ तत्संगमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ ३ ॥ तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्त्तयिष्यामि तां शृणु ॥ चाक्षुषेऽप्यांतरे पूर्वं मनोर्देवः पितामहः ॥ ४ ॥
सह्याद्रिशिखरे रम्ये प्रजनायोद्यतोऽभवत् ॥ स कृत्वा यज्ञसंभारान्सर्वदेवगणैः सह ॥ ५ ॥ युक्तो हरि-हराभ्यां च तद्गिरेः शिखरं ययौ ॥ भृग्वादयो मुनिगणा मुहूर्ते ब्रह्मदैवते ॥ ६ ॥ तस्य दीक्षाविधा-नाय समाजं चक्रुरादृताः ॥ अथ ज्येष्ठां स्वरां पत्नीमाहूयांचक्रुरंजसा ॥ ७ ॥

यज्ञकी सामिग्री इकट्ठी करके सब देवगणोंको संगलेकर ॥ ५ ॥ विष्णु और महादेवको संग लेकर उस पर्वतकी शिखरको जात भये ब्रह्मदैवतमुहूर्तमें भृगुआदि मुनि ॥ ६ ॥ उनकी दीक्षाविधान करनेके लिये प्रीतिपूर्वक समाज करत भये और उनकी स्वरानामकी बडी

पतीको बुलाया ॥ ७ ॥ वह स्वरा धीरे २ चली तब भृगु विष्णुसे बोले । भृगु बोले । हे विष्णो ! तुमने स्वरा बुलाई वह कैसेभी नहीं आई ॥ ८ ॥ मुहूर्त बीता जाता है अब दीक्षाविधि कैसे होयगी । श्रीकृष्ण बोले । जो शीघ्र स्वरा नहीं आती है तो यहां गायत्रीकी दिक्षाविधान करिये ॥ ९ ॥ क्या इस पवित्र काममें यह उनकी स्त्री नहीं है । नारद बोले । ऐसेही रुद्रविष्णुके वचनको मानत भये

सा शनैरायययौ तावद्भृगुर्विष्णुमुवाच ह ॥ भृगुरुवाच ॥ विष्णो स्वरा त्वयाहूताप्यायाता न कथंचन ॥ ८ ॥ मुहूर्त्तातिक्रमश्चैव कार्यो दीक्षाविधिः कथम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ नायाति चेत्स्वरा शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥ एषापि न भवेत्तस्य भार्या किं पुण्यकर्मणि ॥ नारद उवाच ॥ एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममन्यत ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा च भृगोर्वाक्यं गायत्रीं ब्रह्मणस्तदा ॥ निवेश्य दक्षिणे भागे दिक्षाविधिमथाकरोत ॥ ११ ॥ यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थले नृप ॥ १२ ॥

॥ १० ॥ इस भृगुके वचनको सुनकर गायत्रीको ब्रह्माके दक्षिणभागमें बैठाकर दीक्षाविधिका प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ जितनी देरमें मुनीश्वरोंने दीक्षाविधि करी इतनेहीमें यज्ञस्थलमें स्वरा आवतभई ॥ १२ ॥

फिर स्वरा गायत्रीको ब्रह्माके संग दीक्षा की हुई देखकर सौतपनेके ईर्षासे क्रोधकर ये वचन बोली ॥ १३ ॥ स्वरा बोली। जहां अपूज्योंका पूजन होता है और पूज्योंका पूजन नहीं होता है वहां दुर्भिक्ष मरण भय ये तीन होते हैं ॥ १४ ॥ जो यह ब्रह्माके दक्षिणभागमें मेरे आसनपर बैठी है इससे मनुष्य जिसको २ न देखसकैं ऐसी गुप्तरूपवाली नदी होयगी ॥१५॥ मेरे आसनपर मुझसे छोटी तुमने बैठाय

ततस्तां दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणा सह ॥ सापत्न्येर्ष्यापरा क्रोधात्स्वरा वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ स्वरोवाच ॥ अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ॥ त्रीणि तत्र भविष्यंति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥ १४ ॥ येयं च दक्षिणे भागे उपविष्टा मदासने ॥ तस्माल्लोकैः सदाऽदृश्या गुप्तरूपा तु निम्नगा ॥ १५ ॥ मदासने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता ॥ तस्मात्सर्वे जडीभूता नदीरूपा भविष्यथ ॥ १६ ॥ ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कंपिताधरा ॥ समुत्थायाशपद्देवैर्वार्यमाणापि तां स्वराम् ॥ १७ ॥

दीनी इससे तुमलोग जड़ीभूत होकर नदीरूप होउगे ॥ १६ ॥ फिर उसके शापको सुनकर गायत्रीका होठ क्रोधकेमारे कांपने लगा देवताओंने उसको रोका तौभी स्वराको शाप देत भई ॥ १७ ॥

गायत्री बोली । जैसे ब्रह्माजी तेरे पति हैं वैसेही मेरेभी हैं तूने वृथा शाप दिया इससे तूभी नदी हो ॥ १८ ॥ नारदजी बोले । फिर शिव और विष्णुसे लेकर सब देवता हाहाकार करने लगे दंडवत् प्रणाम करके स्वरासे प्रार्थना करनलगे ॥ १९ ॥ देवता बोले । हे देवि ! अब जो हम ब्रह्मादिक सर्व देवोंको शाप देदिया जो सब जड़ीभूत होकर नदीरूप हो जांयगे ॥ २० ॥ तौ ये तीनोंलोक नष्ट हो

गायत्र्युवाच ॥ भर्त्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येष तथा खलु ॥ वृथा शापस्त्वया दत्तो भव त्वमपि निम्नगा ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः सुरा ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ स्वरां तत्र विजिज्ञपुः ॥ १९ ॥ देवाऊचुः ॥ देवि सर्वे वयं शप्ता ब्रह्माद्या यत्त्वयाऽधुना ॥ यदि सर्वे जडीभूता भविष्यामोऽत्र निम्नगाः ॥ २० ॥ तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनश्यति हि निश्चितम् ॥ अविवेककृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ २१ ॥ स्वरोवाच ॥ नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः ॥ तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु ॥ २२ ॥

जांयगे ये शाप तुमने विना विचारे देदिया थे लौटना चहिये ॥ २१ ॥ स्वरा बोली । हे देवताओ ! तुमने यज्ञकी आदिमें गणेशजीका पूजन नहीं किया इससे मेरे क्रोधसे ये विघ्न निस्सन्देह पैदा हुआ ॥ २२ ॥

मेरा यह वचन निश्चय है झूंठ नहीं है इससे अपने अंशोंसे जड़ीभूत हो तुम सब नदी होओ ॥ २३ ॥ और हम दोनों सौतेंभी अपने अंशोंसे नदियां होंयगी पश्चिमकी तरफ बहेंगी ॥ २४ ॥ नारदजी बोले ॥ ऐसे स्वराके वचनको सुनकर ब्रह्मा विष्णु और शिव ये जड़ीभूत होकर अपने अंशसे नदी होतभये ॥ २५ ॥ वहां विष्णु तौ कृष्णानदी होगये और शिव वेण्याहुए और ब्रह्मा

नापि मद्वचनं ह्येतदसत्यं खलु जायते ॥ तस्मात्स्वांशैर्जडीभूता यूयं भवत निम्नगाः ॥ २३ ॥ आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे ॥ भविष्यावोऽत्र भो देवाः पश्चिमाभिमुखावहे ॥ २४ ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ जडीभूतामवन्नद्यः स्वांशैः सर्वे तदा नृप ॥ २५ ॥ तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्या देवो महेश्वरः ॥ ब्रह्मा ककुद्मिनी चापि पृथगेवाभवन्नृप ॥२६॥ देवाः स्वानपि तानंशाञ्जडीकृत्वा विचिक्षिपुः ॥ सह्याद्रिशिखरेभ्यस्ते पृथगासंस्तु निम्नगाः ॥ २७ ॥

ककुद्मी नाम नदी भये ये सब अलग २ हुए ॥ २६ ॥ देवता अपने २ अंशोंको जड़ीकरके फेंकते भये सह्याचलकी शिखरोंसे नदी होकर वे अलग २ बहने लगे ॥ २७ ॥

देवताओंके अंशसे पश्चिमवाहिनी नदीयां होत भईं और उनकी स्त्रियोंके अंशसे सैंकडो हजारों नदियां होत भईं ॥ २८ ॥ गायत्री और स्वरा ये पश्चिमवाहिनी नदियां भईं सावित्री नामसे प्रसिद्ध भईं ॥ २९ ॥ ब्रह्माजीने उस यज्ञमें विष्णु और शिव इन दोनोंकी स्थापना की महाबल और अतिबल नामक देवता होत भये ॥ ३० ॥ कृष्णाके उपाख्यानको जो मनुष्य सुनैगा और सुनावैगा उसको उनके दर्शन

देवाद्यैः पूर्ववाहिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः ॥ तत्पत्न्यंशैः पृथक्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा ॥ योगेनाभवतान्नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते ॥ २९ ॥ ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ ॥ महाबलातिबलिनौ नाम्ना देवौ बभूवतुः ॥ ३० ॥ कृष्णोद्भवं पापहरं पुमान्यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ॥ स्यात्तस्य पुंसः सकलं फलं यत्तद्दर्शनस्नानगमोद्भवं स्मृतम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः ॥ संपूज्यं नारदं सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये ॥ १ ॥

और स्नानका फल मिलैगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ श्रीकृष्ण बोले । ऐसे उनके वचनको सुनकर विस्मित मन होकर पृथु नारदका अच्छीतरह पूजन करके बिदा करत भये ॥ १ ॥

इससे ये तीनों व्रत हमको बहुत प्यारे हैं माघ, कार्तिक और एकादशी ये तीनों बराबर प्यारे हैं ॥ २ ॥ वनस्पतियोंके बीचमें तुलसी और महिनोंमें कार्तिक तिथियोंमें एकादशी और क्षेत्रोंमें द्वारका मुझको प्यारी है ॥ ३ ॥ जितेन्द्री होकर जो इनका सेवन करैगा वह हमको इतना प्रिय होगा जितना यज्ञादिकोंके करनेसे नहीं होता है ॥ ४ ॥ उस मनुष्यको पापोंसे भय न करना चाहिये जो मनुष्य

तस्माद्व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीव प्रियंकरम् ॥ माघकार्तिकयोस्तद्वत्तथैवैकादशीव्रतम् ॥ २ ॥ वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः ॥ एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥ ३ ॥ एतेषां सेवनं यस्तु करोति नियतेंद्रियः ॥ स मे वल्लभतां याति न तथा यजनादिभिः ॥४ ॥ पापेभ्यो न भयं तेन कर्त्तव्यं नियमादपि ॥ एतेषां सेवनं कान्ते कुर्वतां मत्प्रसादतः ॥ ५ ॥ सत्यभामोवाच ॥ विस्मापनीयं तन्नाथ यत्त्वया कथितं मम ॥ परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता ॥ ६ ॥ इत्थंप्रभावोऽयं मासः कार्तिकस्ते प्रियंकरः ॥ स्वामिद्रोहादिपापानि स्नानपुण्यैर्गतानि यत् ॥ ७ ॥

नियमसे इन तीनोंका सेवन करते हैं मेरे अनुग्रहसे उनके पाप दूर हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सत्यभामा बोली । हे नाथ ! आपने जो मुझसे कहा कि दूसरे दिये हुए पुण्यसे कलहा मुक्त होगई ये बड़ेआश्चर्यकी बात है ॥ ६ ॥ इस कार्तिकका ऐसा प्रभाव है आपको

प्रसन्न करनेवाला है स्वामीसे वैर करना इत्यादि पापि कार्तिकस्नानके पुण्यसे दूर हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जो पराया किया पुण्य है वह देनेसे मिल जाता है और विना दिया किसी मार्गसे मिल सकता है कि नहीं सो आप कहो ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण बोले । विनादिये हुए पुण्य और पाप जिस कर्मसे मिलैं हैं सो तुम अच्छी तरह सुनो ॥ ९ ॥ सतयुग त्रेता और द्वापरमें देश गांव और कुल पुण्य पापके

दत्तं च लभ्यते पुण्यं यत्परेण कृतं किल ॥ अदत्तं केन मार्गेण लभ्यते वा न वेति च ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि पापान्यपि तथा नरैः ॥ प्राप्यंते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय ॥ ९ ॥ देशग्रामकुलानि स्युर्भागभांजि कृतादिषु ॥ कलौ तु केवलं कर्त्ता फलभुक्पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थेयमुदाहृता ॥ संसर्गात्पुण्यपापानि यथा यांति तथा शृणु ॥ ११ ॥ एकास्या मैथुनाद्यौनैरेकपात्रस्थभोजनात् ॥ फलार्द्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथावत्पुण्यपापयोः ॥ १२ ॥

अंशभागी होते हैं और कलियुगमें तो केवल करनेवालाही अंशका भागी होता है ॥ १० ॥ संसर्ग न करनेपरभी यह व्यवस्था कही गई और संसर्गसे जैसे पुण्य पाप दूसरेको मिलैं हैं सो सुनो ॥ ११ ॥ एकजगह बैठनेसे, विषय करनेसे, विवाहआदि यौन संबन्धसे, एक पात्रमें भोजन करनेसे मनुष्य पुण्यपापके आधे फलको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

पढ़ानेसे यज्ञ करानेसे एक पंक्तिमें भोजनसे मनुष्य परोक्षमें पाप और पुण्यके चौथाई फलको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ देखनेसे और सुन- नेसे और ध्यानसे मनुष्य दूसरेके किये पुण्यपापके सौमे भागको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ दूसरेकी निन्दा चुगली और धिक्कार देना इनको जो करता है वह उसके किये पापोंको ग्रहण करके अपना पुण्य देता है ॥ १५ ॥ पुण्य पाप करनेवाले मनुष्यकी स्त्री नौकर और शिष्य

अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपंक्त्यशनादपि ॥ तुर्य्यांशं पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः ॥ १३ ॥ दर्शनश्रव- णाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च ॥ परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः ॥ १४ ॥ परस्य निंदां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः ॥ तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः ॥ १५ ॥ कुर्वतः पुण्यपा- पानि सेवां यः कुरुते परः ॥ पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥ १६ ॥ तस्य सेवानु- रूपं च द्रव्यं किंचिन्न दीयते ॥ सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत् ॥ १७ ॥ एकपंक्त्यश्नतां यस्तु लंघेत परिवेषणम् ॥ तत्पुण्यस्य षडंशं तु लभेद्यस्तु विलंघितः ॥ १८ ॥

इनको छोड़कर जो और कोई सेवा करता है ॥ १६ ॥ और सेवाके अनुसार जो धन न दिया जाय तौ वह सेवाके अनुरूप उसके पुण्यके फलको लेता है ॥ १७ ॥ एक पंक्तिमें भोजन करनेवाले मनुष्योंमें जो परोसनेका उलंघन करता अथवा एकसा नहीं परोसता

हैं उसके पुण्यके छटे अंशको उल्लंघन किया पुरुष ग्रहण करता है ॥ १८ ॥ स्नान संध्याधिकको करता हुआ मनुष्य जो दूसरेको छूले अथवा दूसरेसे बातचीत करै तो अपने पुण्यकर्मके छटे अंशको दूसरेको निश्चय देता है ॥ १९ ॥ धर्मके कारण जो पुरुष दूसरेसे धन मांगता है वह धन देनेवाला आदमी धन देकर उसके पुण्यके फलको ग्रहण करलेता है ॥ २० ॥ पराये द्रव्यको लेकर जो पुण्यकर्म

स्नानसंध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाथ भाषते ॥ तत्पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम् ॥ १९ ॥ धर्मोद्देशेन यद्द्रव्यमपरं याचते नरः ॥ तत्कर्मजं यस्य धनं तस्य दत्त्वाप्नुयात्फलम् ॥ २० ॥ अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः ॥ कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥ २१ ॥ नापकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः ॥ धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्यानुरूपतः ॥ २२ ॥ बुद्धिदातानुमंता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ प्रेरकश्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥ २३ ॥

करता है वह कर्म करनेवाला पापका भागी होय है और धनीको पुण्यका फल मिलै है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य दूसरेके ऋणको चुकाये विना मरजाता है तब धनी अपने धनके अनुसार उसके पुण्यके फलको ग्रहकर लेता है ॥ २२ ॥ जो आदमी शिक्षा देता है सलाह देता है सामिग्री देता है और प्रेरणा करता है वह पुण्यपापके छटे अंशको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

प्रजाके पुण्य पापके छटे अंशको राजा हरता है शिष्यके छटे अंशको गुरु स्त्रीके छटे अंशको पति पुत्रके अंशको पिता हरैहै ॥ २४ ॥ जो स्त्री पतिके अनुकूल रहती है और पतिके मनको प्रसन्न करती है वह पतिके पुण्यका आधा भाग लेलेती है ॥ २५ ॥ जो पुण्यात्मा पराये हांथसे दान करैहै नौकर और पुत्रको छोडकर करनेवाला छटे अंशको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ जीविका दैनेवाला खानेवालेके

प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ शिष्याद्गुरुः स्त्रिया भर्त्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥ २४ ॥ स्वपत्युरपि पुण्यस्य योषिदर्द्ध मवाप्नुयात् ॥ चेत्तस्यानुव्रता सा स्याद्भर्तुः संतुष्टिकारिणी ॥ २५ ॥ परहस्तेन दानानि कुर्वतः पुण्यकर्मणः ॥ विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ २६ ॥ वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ आत्मनो वा परस्यापि यदि सेवां न कारयेत् ॥ २७ ॥ इत्थं ह्यदत्ता-न्यपि पुण्यपापान्यायांति नित्यं परसंचितानि ॥ कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ २८ ॥

पुण्यके छटे अंशको ग्रहण करता है जो वह उससे सेवा न करावै तो ॥ २७ ॥ ऐसे विनादिये इकट्ठे पुण्यपापभी मनुष्यको मिलैं हैं परंतु कलियुगमें ये नियम नहीं है पुण्य और पापका भोगनेवाला कर्ताही होता है ॥ २८ ॥

इसमें एक पुराना इतिहास बड़ा उग्र है पवित्र और बुद्धिको देनेवाला है उसे सुनो ॥ २९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्येभाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले। पहिले उज्जैनमें कोई धनेश्वर नामक ब्राह्मण होत भयो वह ब्राह्मणके कर्म नहीं करता बुरे कर्म करनेवाला और दुष्टबुद्धि था ॥ १ ॥ रस कंबल चर्मआदिका व्यापार करता और झूंठ बोलता चोरी वेश्या सुरापान इनको करता और

शृणुष्व चास्मिन्नितिहासमुग्रं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥ २९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पुरावंतीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः ॥ ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः ॥ १ ॥ रसकंबलचर्माद्यैः सोऽसत्यानृतवृत्तिकः ॥ स्तेयवेश्यासुरापानयुक्तः संतप्तमानसः ॥ २ ॥ देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात् ॥ माहिष्मतीं पुरीमागात्कदाचित्स धनेश्वरः ॥ ३ ॥ महिषेण कृतापूर्वं तस्मान्माहिष्मतीति सा ॥ यस्या वप्रगता भाति नर्मदा पापनाशिनी ॥ ४ ॥

उसका चित्त संतापयुक्त रहता था ॥ २ ॥ खरीदने और बेचनेकेलिये देशदेशान्तरमें जाता हुआ वह धनेश्वर कभी माहिष्मती नामक पुरीमें जातभयो ॥ ३ ॥ माहिषने ये पहिले बसाई इससे इसका नाम माहिष्मती हुआ पापोंको नाश करनेवाली नर्मदा नदी इसका परकोटा होरही है ॥ ४ ॥

वहां धनेश्वर बहुत गामोंसे आये कार्तिकस्नानवाले मनुष्योंको देखि वहां एक महीना निवास करतो भयो ॥ ५ ॥ वह विक्रीकेलिये नर्मदाके किनारे घूमता हुआ ब्राह्मण स्नान करके जप और देवताके पूजनमें लगेहुए ब्राह्मणनको देखत भयो ॥ ६ ॥ कोई पुराण पढरहे कोई सुनरहे नृत्य गाना बाजे बजाना विष्णुके चरित्र सुनना ॥ ७ ॥ विष्णुकी मुद्रासे अंकित हैं कोई तुलसीमाला पहिन रहे हैं ऐसे

कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामागतान्नरान् ॥ स दृष्ट्वा विक्रयं कुर्वन्मासमेकमुवास ह ॥ ५ ॥ स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात् ॥ ददर्श ब्राह्मणान्स्नाताञ्जपदेवार्चने स्थितान् ॥ ६ ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्च श्रवणे रतान् ॥ नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान् ॥ ७ ॥ विष्णुमुद्रांकितान्कांश्चिन्मालातुलसि धारिणः ॥ ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः ॥ ८ ॥ नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् ॥ वैष्णवानां तथा विष्णोर्नाम संस्मरणं लभन् ॥ ९ ॥ एवं मासं स्थितः सोऽथ कार्किकोद्यापने विधिम् ॥ क्रियमाणं ददर्शासौ भक्त्या जागरणं हरेः ॥ १० ॥

ब्राह्मणोंको धनेश्वरने देखा ॥ ८ ॥ नित्य वहां घूमता वैष्णवोंका दर्शन स्पर्शन और भाषण करता इससे विष्णुके नामके स्मरणको प्राप्त भयो ॥ ९ ॥ इस प्रकार महीनेपर ठहरा हुआ वह कार्तिकके उद्यापनकी विधिको भक्तिसहित भगवानके जागरणको देखत भयो ॥ १० ॥

पूर्णमासिके दिन ब्राह्मण गौ इनका पूजन कार्तिकस्नान किये मनुष्योंकरके दिये गये भोजन दक्षिणाको देखत भयो ॥ ११ ॥ फिर सायंकालके समय मनुष्योंने शिवजीकी प्रीतिकेलिये दीपदान कियो उसको देखत भयो ॥ १२ ॥ वा तिथिमें महादेवजीने त्रिपुरदैत्यके बनाये हुए तीनों पुरनको जलाय दियो इसलिये भक्तलोग वा तिथिमें महादेवजीका उत्सव करैं हैं ॥ १३ ॥ मेरे बीचमें और

पौर्णमास्यां ततोऽपश्यद्द्विप्रगोपूजनादिकम् ॥ दक्षिणाभोजनाद्यं च दीयमानं व्रतस्थितैः ॥ ११ ॥ ततोऽर्कास्तमये चैव दीपोत्सवविधिं तदा ॥ क्रियमाणं ददर्शासौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः ॥ १२ ॥ त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु ॥ अतस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥ १३ ॥ मम रुद्रस्य यः कश्चिदन्तरं परिकल्पयेत् ॥ तस्य पुण्यक्रियाः सर्वा निष्फलाः स्युर्न संशयः ॥ १४ ॥ ततः पूजादिकं पश्यन्बभ्राम स धनेश्वरः ॥ तावत्कृष्णाहिना दष्टो विह्वलः स पपात ह ॥ १५ ॥ जनास्तं पतितं वीक्ष्य परिवव्रुः कृपान्विताः ॥ तुलसीमिश्रितं तोयं तन्मुखे सिषिचुस्तदा ॥ १६ ॥

महादेवजीमें जो भेदबुद्धि करैं उसके सब पुण्य निष्फल होंय हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ फिर पूजनआदिको देखता वह धनेश्वर घूमता रहा इतनेहीमें एक काले सर्पने आकर काट खाया वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ १५ ॥ मनुष्य उसको गिरा देख दया

करके उसके चारों ओर इकट्ठे होतभये और तुलसी मिला हुआ जल उसके मुखमें डारते भये ॥ १६ ॥ यमराजके किंकर उस मरेहुएको बांधकर कोडानसे मारतेभये यमराजकी संयमनीपुरीको लेजात भये ॥ १७ ॥ चित्रगुप्तने उसको देखकर बालकपनसे लेकर जो उसने बुरे कर्म किये वे सब यमराजके आगे निवेदन किये ॥ १८ ॥ चित्रगुप्त बोला । इसका बालकपनसे लेकर अबतक कोई सुकृत दिखाई

अथ देहं परित्यक्तं तं बद्ध्वा यमकिङ्कराः ॥ ताड्यमानाः कशाघातैर्निन्युः संयमनीं रुषा ॥ १७ ॥ चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा यमायावेदयत्तदा ॥ आबालत्वात्तेन पुरा कर्म यद्दुष्कृतं कृतम् ॥ १८ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ न वास्य दृश्यते किंचिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित् ॥ दुष्कृतं शक्यते वक्तुं वर्षेणापि न भास्करे ॥ १९ ॥ पापमूर्तिरयं दुष्टः केवलं दृश्यते विभो ॥ तस्मादाकल्पमर्यादं निरये परिपच्यताम् ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वज्रतुल्यं वचः क्रोधाद्यमः प्राह स्वकिंकरान् ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं तच्च कालाग्निसंनिभम् ॥ २१ ॥

नहीं देता है । हे सूर्यके पुत्र ! इसके पाप इतने हैं जो मैं वर्षदिनमें भी नहीं कहसकूं हूं ॥ १९ ॥ हे विभो ! ये दुष्ट केवल पापमूर्तिही दिखाई देता है इसलिये कल्पतक ये नरकमें निवास करै ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले । वह यम काल और अग्निके समान अपने रूपको दिखाता हुआ अपने नौकरोंसे क्रोधसे वचन बोला ॥ २१ ॥

यम बोला । हे प्रेतपतिओ ! इसको अपने मुद्गरोंसे मारतेहुए कुंभीपाक नरकमें गेर देउ क्योंकि ये पापस्वरूप है ॥ २२ ॥ फिर मुद्गरके मारनेसे जिसका मस्तक फूटगया ऐसे धनेश्वरको प्रेतपति लेकर तेलके औटनेका जिसमें शब्द हो रहा है ऐसे कुंभीपाक नरकमें गेरत भयो ॥ २३ ॥ जो वह धनेश्वर कुंभीपाकमें गेरा सोई अग्नि शीतल होगई जैसे पहिले प्रल्हादको गेरनेसे शीतल होगई ॥ २४ ॥ उस

यम उवाच ॥ भोः प्रेतपतयस्त्वेनं वध्यमानं स्वमुद्गरैः ॥ कुंभीपाके क्षिपेत्त्वासौ दुष्टः कल्मषदर्शनः ॥ २२ ॥ ततो मुद्गरनिर्भिन्नमूर्द्धानं प्रेतपोऽनयत् ॥ कुंभीपाके च तं क्षिप्त्वा तैलक्कथनशब्दिते ॥ २३ ॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ ॥ कुंभीपाके यथा वन्हिः प्रल्हादक्षेपणात्पुरा ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपा विस्मयान्विताः ॥ वेगादागत्य तत्सर्वं यमायावेदयंस्तदा ॥ २५ ॥ यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा प्रेतपैश्च निवेदितम् ॥ आःकिमेतदिति प्रोच्य तमानीय विचारयत् ॥ २६ ॥

बडे आश्चर्यको देखकर प्रेतपति शीघ्र आकर विस्मययुक्त हो वह सब वृत्तान्त यमराजसे कहत भये ॥ २५ ॥ यमराज प्रेतपतियोंसे निवेदन किये गये इस कौतुकको देखकर आः यह क्या बात है उसको बुलाकर विचार करतभयो ॥ २६ ॥

इतनेहीमें वहां शीघ्रही नारदजी पधारे यमराजने पूजन किया उस ब्राह्मणको देखकर नारदजी बोले ॥ २६ ॥ नारदजी बोले । हे अरुणनंदन ! यह नरक भोगनेयोग्य नहीं है क्योंकि इसने अंतसमयपर नरकोंको दूर करनेवाला कर्म किया है ॥ २८ ॥ जो पुण्य करनेवालोंका दर्शन करता है स्पर्श करता है बोलता है वह मनुष्य पुण्यके छटे अंशको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इस धनेश्वरने अनागिनती

तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम् ॥ यमेन पूजितः सम्यक्तं दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ २७ ॥
नारद उवाच ॥ नैवायं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनंदन ॥ यस्मादंतेऽस्य संजातं कर्म यन्निरयापहम्
॥ २८ ॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् ॥ ततः षडंशमाप्नोतिपुण्यस्य नियतं नरः ॥ २९ ॥
संख्यातीतैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः ॥ कार्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम् ॥ ३० ॥
परिचर्याकरस्तेषां संपूर्णव्रतभागयम् ॥ अत ऊर्ज्जव्रतोद्भूतपुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ३१ ॥

कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्योंका संसर्ग किया है इससे यह उनके पुण्यके छटे अंशका भोगनेवाला है ॥ ३० ॥ इसने उनकी सेवा करी है इससे संपूर्ण व्रतका भागी है इसलिये कार्तिकके व्रतसे मिला जो पुण्य उसकी संख्या नहीं है ॥ ३१ ॥

भक्तवत्सल विष्णुभगवान् कार्तिकका व्रत करनेवाले मनुष्योंके बडे २ पापोंकोभी अपने तेजसे दूर करें हैं ॥ ३२ ॥ अंतसमयपर तुलसी मिलेहुए नर्मदाके जलसे वैष्णवोंने इसको स्नान कराया और भगवान्का नाम सुनाया ॥ ३३ ॥ इससे इसके पाप दूर होगये उत्तम गतिको प्राप्त होनेयोग्य है वैष्णवोंकी इसके ऊपर कृपा है इसलिये नरकमें न गेराजाय ॥ ३४ ॥ जैसे गीले और सूखे पापोंसे नरककी

कार्तिकव्रतिनां पुंसां पातकानि महांत्यपि ॥ प्रदहन्नात्ममहसा विष्णुः सद्भक्तवत्सलः ॥ ३२ ॥ अंते च नर्मदातोयैस्तुलसीमिश्रितैस्स्वयम् ॥ वैष्णवैः स्नापितो विष्णोर्नाम संश्रावितोऽपि च ॥ ॥ ३३ ॥ तस्मान्निर्गतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति ॥ वैष्णवानुग्रही यस्मान्निरये नैव पच्यताम् ॥ ३४ ॥ आर्द्रशुष्कैर्यथा पापैर्निरये भोगसन्निधिः ॥ प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत्स्वर्गस्य सन्निधिस्तथा ॥३५॥ तस्माद-नार्द्रपुण्यो हि यक्षयोनिस्स्थितस्स्वयम् ॥ त्रिलोक्यनिरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान् ॥ ३६ ॥

प्राप्ति होती है ऐसेही अच्छे कर्मोंसे स्वर्ग मिलता है ॥ ३५ ॥ इससे नहीं हैं गीले है पुण्य जिसके ऐसा यह धनेश्वर यक्षयोनि पाकर पापभोगोंको दिखानेवाले सब नरकोंको देखकर मुक्तिको पावै ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण बोले । यह कहकर जब नारदजी चलेगये तब नारदजी वचनके सुननेसे जिसके पुण्य मालुम होगये ऐसे यमराजने दूतके द्वारा उस ब्राह्मणको सब नरक दिखानेकेलिये फिर बुलाया ॥ ३७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णबोले । फिर यमकी आज्ञा माननेवाले उस प्रेतपतिने धनेश्वरको लेजाकर सब नरक दिखाये और बोला ॥ १ ॥ प्रेतपती

श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा ॥ तं विप्रं पुनरनयत्स्वकिंकरेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ ३७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये धनेश्वरोपाख्यानो षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत ॥ दर्शयिष्यंस्तु तान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा ॥ १ ॥ प्रेतप उवाच ॥ पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर महाभयान् ॥ येषु पापकरा नित्यं पच्यंते यमकिंकरैः ॥ २ ॥ तप्तवालुकनामायं निरयो घोरदर्शनः ॥ यस्मिन्नन्ते दग्धदेहाः क्रंदंते पापकारिणः ॥ ३ ॥

बोला । हे धनेश्वर ! इन महा भयंकर घोरनरकोंको देखो जिनके बीचमें पापी मनुष्योंको यमके दूत लेजाकर पकाते हैं ॥२॥ तप्त वालुक नामका ये घोर नरक है जिसमें जली है देह जिनकी ऐसे पापीलोग चिल्ला रहे हैं ॥ ३ ॥

भोजनके समय आये भये भूंखे अभ्यागतोंका जो सत्कार नहीं करते वे अपने कर्मसे पकाये जाते हैं ॥ ४ ॥ गुरु अग्नि ब्राह्मण गौं वेद क्षत्रिय इनके जो लात मारें हैं उनके ये पैर जलाये गये हैं ॥ ५ ॥ इस नरकके छः भेद हैं यह अनेक पापोंसे मिलै हैं तैसेही ये दूसरा अंधतामिस्र नामक नरक है ॥ ६ ॥ सुईके समान जिनके मुख हैं भयंकर जिनके मुख हैं ऐसे तमोतकीआदि कीडोंसे पापी मनुष्योंके

अतिथीन्वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागताँश्च ये ॥ न पूजयंति ते ह्येते पच्यंते स्वेन कर्मणा ॥ ४ ॥
गुर्वग्नीन्ब्राह्मणान्गाश्च वेदान्मूर्द्धाभिषिक्तकान् ॥ ताडयंति पदा ये वै ते निर्दग्धांघ्रयस्त्विमे ॥ ५ ॥
षड्भेदस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते ॥ तथैवांधतामिस्रोऽयं द्वितीयो निरयो महान् ॥ ६ ॥
पश्य सूचीमुखैर्देहा भिद्यंते पापकर्मणाम् ॥ कृमिभिर्घोरवक्त्रैश्च तमोतक्यादिभिर्द्विज ॥ ७ ॥ असावपि स्थितः षोढा श्वगृध्रपक्षिभिस्तथा ॥ परमर्मभिदो मर्त्याः पच्यंते तेषु पापिनः ॥ ८ ॥ तृतीयः क्रकचो ह्येष निरयो घोरदर्शनः ॥ यत्रेमे क्रकचैर्मर्त्याः पच्यंते पापकारिणः ॥ ९ ॥

शरीर यहां काटे जारहे हैं ॥ ७ ॥ येभी छः प्रकारका है जो मनुष्य दूसरेका मर्मभेदन करते हैं ऐसे पापियोंके मांसको कुत्ता गीधआदि पक्षी खाते हैं ॥ ८ ॥ तीसरा यह क्रकच नामका भयंकर नरक है जिस पापी मनुष्य आरासे चीरे जाते हैं ॥ ९ ॥

यह क्रकचभी असिपत्रआदि भेदोंसे छः प्रकारका है इसमें जो मनुष्य स्त्रीपुत्र आदिकनका वियोग करावें हैं वे प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ औरभी जो प्रियवस्तु हैं उनसे जो वियोग करते हैं वे मनुष्य यहां पकाये जांय हैं ॥ ११ ॥ तलवारके समान पैने पत्तोंसे काटे जाय हैं भेडियोंके डरके मारे भागे हैं पापीलोग यहां पकाये जाते हैं सो पुकार रहे हैं इनको देखो ये अर्गलाख्य महाभयंकर चौथा नरक है

असिपत्रवनाद्यैश्चषट्प्रकारोऽप्ययं स्थितः ॥ पत्नीपुत्रादिभिर्ये वै वियोगं प्रापयंति हि ॥ १० ॥
इष्टैरन्यैरपि नरान्पच्यंते त इमे नराः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमाना वृकभीत्या पलायिता ॥ ११ ॥
पच्यंते पापिनः पश्य क्रंदमाना इतस्ततः ॥ अर्गलाख्यो महारौद्रश्चतुर्थो निरयो ह्ययम् ॥ १२ ॥
पश्य नानाविधैः पाशैराबध्य यमकिंकरैः ॥ असावपि च षड्भेदो वधभेदादिभिः स्मृतः ॥ १३ ॥
कूटशाल्मलिनामानं निरयं पश्य पंचमम् ॥ यत्रांगारनिभा ह्येताः शाल्मलीलोमसन्निभाः ॥ १४ ॥
यत्र षोढाभिपच्यंते यातनाभिरिमे जनाः ॥ परदारपरद्रोहपरद्रव्यरताश्च ये ॥ १५ ॥

॥ १२ ॥ अनेक तरहकी फासीनसे बांधकर यमके दूत धमका रहे है इसके छः भेद हैं सो तुम देखो ॥ १३ ॥ पांचवां कूटशाल्मली-नामक नरक हैं इसे देखो इसमें अंगारके समान सैमरके कांटे हैं ॥ १४ ॥ जो आदमी पराई स्त्रीसे रति करें है दूसरेसे वैर करें और

दूसरेके द्रव्यको ग्रहण करैं हैं वे मनुष्य छः प्रकारके कष्टोंसे पकाये जाते हैं ॥ १५ ॥ ये रक्तपूयनामक छटा नरक हैं इसमें लोहू और पीव भरी है इसे देखो इसमें पाप करनेवाले नीचे मुंह करके पकाये जाय हैं ॥ १६ ॥ जो अभक्ष वस्तुओंको खाते हैं और जो दुसरेकी निन्दा और चुगली करैं हैं वे जब मारे पीटे जाते हैं तब भयंकर शब्द करते हैं ॥ १७ ॥ यहभी दुर्गंध आदिसे छः प्रकारका भयंकर

रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं निरयमुल्बणम् ॥ अधोमुखा विपच्यंते यत्र पापकृतो नराः ॥ १६ ॥ अभक्ष्यभक्षका निन्दापैशुन्याभिरता इमे ॥ भज्यमाना वध्यमानाः क्रंदंते भैरवान् रवान् ॥ १७ ॥ षट्प्रकारो विगंधाद्यैरसावपि हि संस्थितः ॥ कुंभीपाकः सप्तमोऽयं निरयो घोरदर्शनः ॥ १८ ॥ षोढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय ॥ महापातकिनो यत्र पीड्यन्ते यमकिंकरैः ॥ १९ ॥ बहून्यब्दस-हस्राणि भुंजते यमयातनाः ॥ चत्वारिंशान्मितानेतान्द्व्यधिकान्पश्य रौरवान् ॥ २० ॥

कुंभीपाक नामका सातवां नरक है ॥ १८ ॥ हे धनेश्वर ! यह तैल आदि द्रव्योंसे छः तरहका है इसे देखो इसमें महापातकी मनुष्योंको यमके दूत पीडित करते हैं ॥ १९ ॥ कई हजारवर्षतक पापी इनमें यमयातनाको भोगते हैं ये ४२ रौरव नामक नरक है इनको देखो ॥ २० ॥

विनाकामनाके जो पाप किया जाय वह सूखा है और कामनासे जो किया जाय वह गीला है गीले और सूखेके भेदसे पाप दो प्रकारके होते हैं ॥ २१ ॥ चौरासी तरहके अलग २ नरक हैं अप्रकीर्ण प्राक्तेय मलनीकरण जातिभ्रंशकर और उपपातक अतिपाप महापाप ये सात तरहके महापातक हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ इन पापोंसे क्रमसे सात नरकोंमें पकाये जांय हैं कार्तिकका व्रत करनवाले पुरुषोंसे जो

अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् ॥ आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २१ ॥
चतुराशीतिसंख्याकैः पृथग्भेदानवस्थितान् ॥ अप्रकीर्णं तु पांक्तेयं मलिनीकरणं तथा ॥ २२ ॥
जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् ॥ अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥ २३ ॥ एभिः सप्तसु
पच्यंते निरयेषु यथाक्रमम् ॥ कार्तिकव्रतिभिः पुंभिर्यत्संसर्गोऽभवत्तव ॥ २४ ॥ तत्पुण्योपचयात्तत्र
निर्हता निरयाः खलु ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाहरत ॥ धने-
श्वरं यक्षलोके यक्षेशोऽभूत्स तत्र ह ॥ २६ ॥

तुह्मारा संसर्ग हुआ, उनके पुण्योंके प्रभावसे तुम्हारे नरक दूर भये ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले । प्रेतपति धनेश्वरको नरक दिखायके यक्षलो-
कमें लैगयो वहां वह यक्षनको स्वामी हैगयो ॥ २६ ॥

वह धनेश्वर धनयक्षनामको प्रसिद्ध कुबेरको अनुचर होतभयो जिसके नामसे विश्वामित्र अयोध्यामें तीर्थ करते भये ॥ २७ ॥ ऐसा है प्रभाव जिसका ऐसा कार्तिकका व्रत मुक्ति और मुक्तिका दैनेवाला है जो कोई व्रतको करे उसके अनेक पाप दूर होजाते हैं और उसका जो दर्शन करै उसकीभी मुक्ति होजाय ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

धनदस्यानुगः सोऽयं धनयक्षेति विश्रुतः ॥ यदाख्ययाकरोत्तीर्थमयोध्यायां तु गाधिजः ॥ २७ ॥ एवंप्रभावः खलु कार्तिकेयो मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात् ॥ यो हंत्यनेकार्ज्जितपातकानि कर्तुश्च संदर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियाम् ॥ सायंसंध्याविधिं कर्तुं जगाम च निजं गृहम् ॥ १ ॥ एवंप्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्तिकः पापनाशनः ॥ विष्णुप्रियकरोऽत्यन्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ २ ॥

सूतजी बोले । वासुदेव अतिप्यारी सत्यभामासे यह कहकर सायंकालका संध्योपासन करनेकेलिये अपने घरमें जातभयो ॥ १ ॥ ऐसे प्रभाववाला पापोंको नाश करनेवाला कार्तिकमाहात्म्य आपसे कहा ये विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है और भुक्तिमुक्तिके फलको दैनेवाला है ॥ २ ॥

हरिका जागरण, प्रातः स्नान, तुलसीका सेवन, उद्यापन, दीपदान ये कार्तिकके व्रत हैं ॥ ३ ॥ ये जो पांच प्रकारका व्रत कहा है इसके कार्तिकमें पूरे करनेसे भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ ऋषि बोले । विष्णुको प्रसन्न करनेवाला अत्यन्त फलको देनेवाला जिससे रोमांच खडे हो जाय ऐसा ये कार्तिकव्रत इतिहाससमेत आपने कहा ॥ ५ ॥ यह कार्तिकका व्रत पाप और दुखके

हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम् ॥ उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके ॥ ३ ॥ पंचकैर्व्रतकैरेभिः संपूर्णं कार्तिकव्रतम् ॥ फलमाप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विष्णुप्रियोऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणः ॥ कार्तिकप्रभवः सम्यक्सेतिहासोऽतिविस्मितः ॥ ५ ॥ अवश्यं च तथा कार्यः पापदुःखनिवृत्तये ॥ मोक्षार्थिभिर्नरैः सम्यग्भोगकामैरथापि वा ॥ ६ ॥ एवं स्थितो यदा कश्चिद्व्रतस्थः संकटे स्थितः ॥ दुर्गारण्यस्थितो वापि व्याधिभिः परिपीडितः ॥ ७ ॥ कथं तेन प्रकर्त्तव्यं कार्तिकव्रतकं शुभम् ॥ इदमत्यंतफलदं न त्याज्यं सर्वथा नरैः ॥ ८ ॥

दूर करनेकेलिये मोक्षकी और कामयोगकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको अवश्य करना चाहिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार व्रतमें लगाहुआ मनुष्य जो संकटमें पडजाय अथवा गहरे वनमें स्थित होय वा रोगी होजाय ॥ ७ ॥ तो यह शुभ कार्तिकका व्रत कैसे किया जाय और यह

व्रत अत्यन्त फल देनेवाला है इसलिये सर्वथा त्याज्य नहीं है ॥ ८ ॥ सूतजी बोले । इसप्रकार आपत्तिमें पडाहुआ पुरुष जो नित्य दृढ संकल्प करके विष्णु अथवा शिवजीके मंदिरमें जाकर जागरण करै ॥ ९ ॥ जो शिवजी विष्णुको मंदिर न होय किसी और देवताके स्थानमें करै जो कठिन वनमें अथवा आपत्तिमें स्थित होय ॥ १० ॥ तौ पीपरके नीचे अथवा तुलसीके जहां वृक्ष होंय वहां जागरण करै ॥ ११ ॥

सूत उवाच ॥ एवमापद्गतो यस्तु नरो नित्यं दृढव्रतः ॥ विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥ ९ ॥ शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ ॥ दुर्गाटव्यां स्थितो यस्तु यदि वापद्गतो भवेत् ॥ १० ॥ कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ॥ ११ ॥ विष्णुनामप्रबंधानां गायनं विष्णुसंनिधौ ॥ गोसहस्रप्रदाने तत्फलमाप्नोति मानवः ॥ १२ ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत ॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्त्तकः फलमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

विष्णुके समीप विष्णुसहस्रनामका पाठ करै हजार गौके दानका फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य बाजे बजावे उसको वाजपेय यज्ञका फल मिलै हैं और जो भगवानके आगे नाचै उसे तीर्थोंके स्नानका फल मिलै है ॥ १३ ॥

आपत्तिके कारणसे जो कहीं जल न मिले अथवा रोगी होय तौ विष्णुके नामसे मार्जन करै ॥ १४ ॥ जो मनुष्य व्रतमें स्थित होकर उद्यापन विधिको न करसके तौ व्रतके पूरण करनेकेलिये ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १५ ॥ पृथ्वीपर ब्राह्मण अव्यक्तरूप विष्णुका स्वरूप हैं ब्राह्मणके प्रसन्न होनेसे विष्णु सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ १६ ॥ जो आप दीपदान न करसकै तो पराई दीपकको चैतन्य कर दे अथवा

आपद्गतो यदाप्यंभो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ॥ व्याधितो वा यथा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नापि मार्जनम् ॥ १४ ॥
उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रते स्थितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥ १५ ॥ अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपो ब्राह्मणो भुवि ॥ तत्संतुष्टया तु संतुष्टः सर्वदा स्यान्न संशयः ॥ १६ ॥
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ॥ तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातयादिभ्यः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ अभावे-तुलसीनां च वैष्णवं पूजयेद्द्विजम् ॥ तस्मात्सान्निहितो विष्णुः स्वभक्तेष्वेव सर्वदा ॥ १८ ॥ सर्वाभावे व्रती कुर्याद्ब्राह्मणानां गवामपि ॥ सेवामश्वत्थवटयोर्व्रतपूरणहेतवे ॥ १९ ॥

जो उसमें हवा लगती होय तौ बचाय दे ॥ १७ ॥ जो तुलसीके वृक्ष न होंय तौ वैष्णवका पूजन करे क्योंकि विष्णु भगवान् सदा अपने भक्तोंके समीप रहै हैं ॥ १८ ॥ इन सबके प्रभावमें व्रत करनेवाला गौं और ब्राह्मणका पूजन करै और व्रतके पूरण करनेकेलिये

पीपल और वडका पूजन करे ॥ १९ ॥ आपने वड़ और पीपलके वृक्ष गोब्राह्मणके समान कहे सब वृक्षोंसे ये दोनों वृक्ष क्यों अधिक पूजने योग्य हैं ॥ २० ॥ सूतजी बोले । पीपल साक्षात् विष्णुका रूप है इसमें कोई संदेह नहीं है और वड़ शिवजीकारूप है और पलाश ब्रह्माका रूप है ॥ २१ ॥ ऋषि बोले । ब्रह्मा विष्णु और महादेव ये वृक्ष कैसे होगये, हे धर्मज्ञ ! ये हमसे कहो इसमें हमको बड़ा

ऋषय ऊचुः ॥ कथं त्वयाश्वत्थवटौ गोब्राह्मणसमौ कृतौ ॥ सर्वेभ्यस्तु तरुभ्यस्तौ कस्मात्पूज्यतरौ स्मृतौ ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ अश्वत्थरूपी भगवान्विष्णुरेव न संशयः ॥ रुद्ररूपी वटस्तद्वत्पालाशो ब्रह्मरूपधृक् ॥२१॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ एतत्कथय धर्मज्ञ संशयोऽत्र महान्हिनः ॥२२॥ सूत उवाच ॥ पार्वतीशिवयोर्देवाः सुरतं कुर्वतोः किल ॥ अग्निर्ब्राह्मणरूपेण गतश्च विघ्नकृत्पुरा ॥२३॥ ततश्च पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः ॥ रतोत्सवसुखभ्रंशात्कंपमाना रुषा तदा २४

संदेह है ॥ २२ ॥ सूतजी बोले । एक दिन पार्वती और महादेव विषय भोग करतेथे वहां ब्राह्मणका रूप धारण करके अग्नि और देवता गये और विघ्न करत भये ॥ २३ ॥ फिर पार्वती विषयरूपी सुखमें विघ्न होनेसे क्रोधसे कांपतीहुई देवताओंको शाप देत भई ॥ २४ ॥

पार्वती बोली । कृमि और कीटआदिभी विषयसुखको जानते हैं उसमें विघ्न करनेसे हे देवताओ ! तुम वृक्ष होजावो ॥ २५ ॥ सूतजी बोले । इस प्रकार वह पार्वती कुपित होकर देवताओंको शाप देतभई इससे सब देवता वृक्ष होगये ॥ २६ ॥ हे मुनिश्वरो ! इससे ये विष्णु और महादेव दोनों पीपल और वड़का रूप होत भये पीपलके ऊपर शनिकी दृष्टि पड़गई इससे शनिके दिनही उसका स्पर्श

पार्वत्युवाच ॥ कृमिकीटादयोऽप्येते जानंति सुरते सुखम् ॥ तद्विघ्नकारिणो देवा ह्युद्भिदत्वमवाप्स्यथ ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं सा पार्वती देवांश्छशाप क्रुद्धमानसा ॥ तस्माद्वृक्षत्वमापन्नाः सर्वे देवगणाः किल ॥ २६ ॥ तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः ॥ बोधिस्त्वगादार्किदिनं विनैवाऽसंस्पृश्यतामर्कजदृष्टियोगात् ॥ २७॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यभामासंवादे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्पृश्यत्वं कथं प्राप्तः सूत बोधितरुस्त्वयम् ॥ स्पृश्यत्वं हि कथं यातस्तथायं शनिवासरे ॥ १ ॥

करना और दिन नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये भाषाटिकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ऋषि बोले । हे सूत ! ये पीपरका वृक्ष छूने योग्य क्यों नहीं है और शनिवारके दिन क्यों छूआ जाता है ॥ १ ॥

सूतजी बोले । समुद्र मथनकरनेसे जो रत्न देवताओंको मिले उनमें देवता लक्ष्मी और कौस्तुभमणि विष्णुको देतभये ॥ २ ॥ जब विष्णुने लक्ष्मीको भार्या स्वीकार करी तभी लक्ष्मीने भगवान्से प्रार्थना करी ॥ ३ ॥ लक्ष्मी बोली । बड़ीबहीनका विवाह कियेविना छोटीका विवाह कैसे करते हो इससे पहिले हे मधुसूदन ! मेरी बडी बहिनके साथ व्याह करो ॥ ४ ॥ पहिले मेरी बड़ी बहिन

सूत उवाच ॥ समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुः सुरोत्तमाः ॥ श्रियं च कौस्तुभं तेषां विष्णवे प्रददुः सुराः ॥ २ ॥ यावदंगीचकारासौ लक्ष्मीं भार्यार्थमात्मनः ॥ तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिनम् ॥ ३॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ असंस्कृत्य कथं ज्येष्ठां कनिष्ठा परिणीयते ॥ तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन ॥ ४॥ विवाह्य नय मां पश्चादेष धर्मः सनातनः ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा स विष्णुर्लोकभावनः ॥ ५॥ उद्दालकाय मुनये सुदीर्घतपसे तदा ॥ आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल ॥ ६॥

अलक्ष्मीका विवाह करके फिर मेरेसंग विवाह करो यही सनातनधर्म है। सूतजी बोले । लोकको रचनेवाले विष्णु इस बातको सुनकर ॥ ५ ॥ बडे तपस्वी उद्दालक मुनिके लिये अपने वचनके हठसे उस अलक्ष्मीको देतभये ॥ ६ ॥

स्थूल जिसका मुख है श्वेत दांत हैं जीर्ण शरीरको धारण किया है लाल नेत्र हैं शरीर और बाल ये रूखे हैं ॥ ७ ॥ धर्मको जानने-वाले वे मुनि विष्णुके वाक्यसे उसको अंगीकार करके वेदध्वनि करके अपने आश्रममें ले आवत भये ॥ ८ ॥ होमके धूंआंकी सुगंध जिसमें आरही है वेदध्वनि जिसमें होरही ऐसे आश्रमको देखकर दुःखी होकर ये वचन बोली ॥ ९ ॥ ज्येष्ठा बोली । हे ब्रह्मन् !

स्थूलास्यां शुभ्रदशनां जरठीं बिभ्रतीं तनुम् ॥ विततारक्तनयनां रूक्षगात्रशिरोरुहाम् ॥ ७ ॥ स मुनि-र्विष्णुवाक्यात्तामंगीकृत्य स्वमाश्रमम् ॥ वेदध्वनिसमायुक्तमानयामास धर्मवित् ॥ ८ ॥ होमधूमसु-गंधाढ्यं वेदघोषनिनादितम् ॥ आश्रमं तं समालोक्य व्यथिता साब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥ ज्यष्ठोवाच ॥ नहिवासोऽनुरूपोऽयं वेदध्वनियुतो मम ॥ न चागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मां ध्रुवम् ॥१०॥ उद्दालक उवाच ॥ कथं नायासि कान्ते वै वर्त्तते संमतं तव ॥ तव योग्या च वसतिः का भवेच्च वदस्वतत् ॥ ११ ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ वेदध्वनिर्भवेद्यास्मिन्नतिथीनां च पूजनम् ॥ यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥१२॥

जिसमें वेदध्वनि होरही है ऐसा स्थान मेरे योग्य नहीं है मैं यहां नहीं आऊंगी निश्चय मुझको दूसरी जगह लेचलो ॥ १० ॥ उद्दालक बोले । हे कान्ते ! तू यहां क्यों नहीं आती है तेरा यही विचार है तो तू बताय तेरे योग्य कौनसा स्थान है॥११॥ज्येष्ठा बोली।जहां वेदध्वनि

होती होय और अभ्यागतका सत्कार होय और यज्ञदानादिक होंय वहां मैं नहीं रहती हूं ॥ १२ ॥ जहां स्त्रीपुरुषमें आपसमें प्रेम रहे है और पितृ वा देवताओंका जहां पूजन होय वहां मैं नहीं वसतीहूँ ॥ १३ ॥ जहां उद्यम करनेवाला नीतिमें चतुर धर्मात्मा प्रिय बोलनेवाला गुरूकी पूजा करनेवाला रहता हो वहां मैं निवास नहीं करूं हूं ॥ १४ ॥ दिनरात जहां स्त्रीपुरुषमें

परस्परानुरागेण दांपत्यं यत्र वर्तते ॥ पितृदेवार्चनं यत्र तत्र नैव वसाम्यहम् ॥ १३ ॥
उद्यमी नीतिकुशलो धर्मयुक्तः प्रियंवदः ॥ गुरुपूजारतो यत्र तस्मिन्नैव वसाम्यहम् ॥ १४ ॥ रात्रौ
दिवा गृहे यस्मिन्दंपत्योः कलहो भवेत् ॥ निराशा यांत्यतिथयस्तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १५ ॥
वृद्धसज्जनमित्राणां यत्र स्यादपमाननम् ॥ निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥ १६ ॥
दुराचाररता यत्र परद्रव्यापहारिणः ॥ परदाररताश्चापि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १७ ॥

लडाई होती होय अभ्यागत लोगोंका जहां सत्कार नहीं होय उस स्थानमें मेरी प्रीति है ॥ १५ ॥ वृद्ध और सज्जनोंका जहां अपमान होय मित्रका अपमान होय जहां कठोर वचन बोलते हों वहां मैं नित्य निवास करती हूं ॥ १६ ॥ जहां खोटा आचरण करते हैं पराये द्रव्यको हरते हैं पराई स्त्रीसे रति करते हैं उस स्थानमें मेरी प्रीति है ॥ १७ ॥

जहां गोवध, मदिरापान और ब्रह्महत्यासे आदि लेकर पाप होते हैं उस स्थानमें मेरी रति है ॥ १८ ॥ सूतजी बोले । इस प्रकार स्त्रीके वचनको सुनकर उद्दालकका मुख उदास होगया फिर उद्दालक उस अलक्ष्मीसे वचन बोले ॥ १९ ॥ उद्दालक बोले । हे अलक्ष्मी ! जबतक मैं तुह्मारे निवासकेलिये स्थान ढूंढू तबतक तुम पीपरके वृक्षके नीचे रहो ॥ २० ॥ सूतजी बोले । इसप्रकार वहां

गोवधो मद्यपानं च यत्र संजायतेऽनिशम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् ॥ उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाच ह ॥ १९ ॥ उद्दालक उवाच ॥ अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीस्त्वं स्थिरा भव ॥ आवासस्थानमालोक्य यावच्चायाम्यहं पुनः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा ॥ प्रतीक्षंती चिरं तत्र यावत्तं न ददर्श सा ॥ २१ ॥ तदा रुरोद करुणं भर्तुस्त्यागेन दुःखिता ॥ तत्तस्या रुदितं लक्ष्मीर्वैकुंठभवनेऽशृणोत् ॥ २२ ॥

उसको बैठाकर उद्दालकऋषि चलदिये वह वहां बहुत देरतक उनकी वाट देखती रही पर दर्शन न हुआ ॥ २१ ॥ फिर स्वामीके त्यागसे दुःखी होकर करुणापूर्वक विलाप करतभई उसके विलापको लक्ष्मी वैकुंठमें सुनतभई ॥ २२ ॥

फिर लक्ष्मीने व्याकुल होकर विष्णुसे निवेदन किया, लक्ष्मी बोली । हे स्वामी ! मेरी बडी बहिन पतिके त्यागसे दुःखी होरही है ॥२३॥ हे कृपालो ! जो तुमको मैं प्यारी हूँ तौ उसको जाकर समझाओ । सूतजी बोले । कृपानिधि भगवान् लक्ष्मीको संग लेकर वहां पधारे ॥ २४ ॥ उस अलक्ष्मीको समझाते हुए ये वचन बोले । विष्णु बोले । हे अलक्ष्मी ! पीपरकी जडका सहारा लेकर तू यहां

तदा विज्ञापयामास विष्णुमुद्विग्नमानसा ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वामिन्मद्भगिनी ज्येष्ठा भर्तुस्त्यागेन दुःखिता ॥ २३ ॥ तामश्वासयितुं याहि कृपालो यद्यहं प्रिया ॥ सूत उवाच ॥ ॥ लक्ष्म्या सह ततो विष्णुस्तत्रागच्छन्कृपानिधिः ॥ २४ ॥ आश्वासयन्नलक्ष्मीं तामिदं वचनमब्रवीत ॥ विष्णुरुवाच ॥ अश्वत्थमूलमाश्रित्य सदाऽलक्ष्मि स्थिरा भव ॥ २५ ॥ ममांशसंभवो ह्येष आवासस्ते मया कृतः ॥ प्रत्यब्दं येऽर्चयिष्यंति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ॥ २६ ॥ तेष्वेव श्रीः कनिष्ठा ते सदा तिष्ठत्वनामया ॥ अंगनाभिः सदा पूज्या विविधैर्बलिभिस्तदा ॥ २७ ॥

सदा निवास कर ॥ २५ ॥ यह मेरे अंशसे पैदा हुआ है और मैंने तुह्मारे बसनेके लिये स्थान निश्चय करदिया है जो गृहस्थ लोग प्रतिवर्ष तुह्मारा पूजन करेंगे ॥ २६ ॥ उनके घरमें तुह्मारी छोटी बहिन लक्ष्मी अचल होकर निवास करेगी । स्त्रियां अनेक प्रकारकी

भेट देकर पूजन करेंगी ॥ २७ ॥ पुष्प धूप दीपसे जो मनुष्य तुह्मारा पूजन करैगा उससे लक्ष्मी प्रसन्न होगी । कृष्ण और सत्यभामाका नारद और पृथुका संवाद मैंने कथन किया ॥ २८ ॥ और क्या पूछनेकी इच्छा करते हो मैं विस्तारपूर्वक कहूं इस वचनको सुनकर ऋषि मन्द मुसक्यान करने लगे ॥ २९ ॥ आपसमें कुछ नहीं बोले चुपचाप बैठ गये सब शांतचित्त होकर बदरिकाश्रमके दर्शनके

पुष्पधूपादिभिश्चैव तेषां लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ सूत उवाच ॥ कृष्णसत्योश्च संवादं नारदस्य पृथोस्तथा ॥२८॥ अन्यत्किं प्रष्टुकामा स्थ वदामि च सुविस्तरम् ॥ इति तद्वचनादेव ऋषयः सास्मितास्तदा॥२९॥ नोचुः परस्परं किंचित्तूष्णीमेवावतस्थिरे ॥ जग्मुश्च बदरीं द्रष्टुं सर्वे वै शांतमानसाः ॥ ३० ॥ य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा नरोत्तमान् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यासंवादे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ कार्तिकमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

लिये जात भये ॥ ३० ॥ जो इस कथाको सुनै और मनुष्योंको सुनावै वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुके स्वरूपको प्राप्त होय ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यासंवादे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

जाहि-

१

“ कौतुक दर्शन ” अर्थात्

सर्वोत्तम इन्द्रजाल.

आजतक अपने अनेक इन्द्रजालके ग्रन्थ देखे होंगे और इनका साधन भी किया होगा तथापि इस इन्द्रजालको देखनेसेही आप जान जावेंगे कि, सच्चा और झूटा कौन है ? यद्यपि अन्य इन्द्रजालोंमेंभी मंत्र झूटे नहीं हैं तथापि उनके सिद्धीका कुंजी आपको उनमें कहीं भी नहीं मिली होगी । इस इन्द्रजालमें ग्रन्थकर्ताने हृदयसंकीर्णताको दूरसेही नमस्कार कर. यंत्र मंत्रकी सिद्धिका सच्चा मार्ग और उसकी कुंजी देदी है । इससे यदि आप इन्द्रजाल विद्या तथा यंत्र मंत्रद्वारा अनेक आश्चर्य्य और उपकारके कार्य करना चाहते हैं तो इस इन्द्रजालको एक बार अवश्य देखिये । दाम १ रु. इकट्ठी तीन प्रति लेनेसे २ रुपयेमें देंगे महसूल अलग.

विष्णुसहस्रनाम सचित्र.

अत्यंत बडे अक्षरोंमें छपाकर रेशमी बैडींगसह तैयार दाम ५ आना. १०० कापी खरीदनेसे १८ रुपयेमें देंगे.

कबीरकृष्णगीता ।

यह कबीरपन्थियोंका वही परम प्रिय ग्रन्थ है जिसके लिये वे वरसोंसे तडप रहेथे.

यह, कबीरपन्थियोंका, वही पवित्र ग्रन्थ है. जिसकी कथा कबीरपंथी लोग (विशेषकर छत्तीसगढवाले) भागवतादि महापुराणोंके समान महान समारोहसे सुनते हैं जहां कहीं इस ग्रन्थकी कथा होनेकी बात सुननेमें आती है, लोग अपना सब काम काज छोडकर उसे सुननेके लिये जा प्रस्तुत होते हैं जिसकी कथाको सुनने और सुनवाने के लिये लोक सहस्रों रुपया खर्च करके अपनेको धन्य मानते हैं । ऐसा होनेपरभी इस ग्रन्थका सब किसीको मिलना सहज बात नहीं है । बहुत रुपया खर्च करकेभी यह ग्रन्थ बहुत कम लोगोंको प्राप्त होता था, जिसको छपवानेके लिये—कबीरपन्थी ग्रन्थोंके प्रसिद्ध जीर्णोद्धारक कबीरपन्थी भारतपथिक स्वामी युगलानन्द बिहारीसे सहस्रों साधु और सेवक, अनुरोध करतेरहते हैं इत्यादि ! इत्यादि ! वही प्रसिद्ध ग्रन्थ “कबीरकृष्णगीता” कबीरपन्थियोंके प्रधान आचार्य्य स्थान कबीरधर्मनगर (छत्तीसगढ) से उक्त स्वामिद्वारा प्राप्त कर हमने सुन्दर निर्णयसागरी टाईप, सुंदर ग्लेज कागदपर छापकर सुन्दर पुठेसे सुशोभित किया है । इतनेही नहीं इस ग्रन्थका पोथीके समान आकार गुटका रूपमें ऐसा सुन्दर हुआ है जिसको देखतेही सर्व साधु और गृहस्थ लोग प्रसन्न हो जावेंगे, इसपरभी ग्रन्थमें कबीर साहेबको ऐसा सुन्दर चित्र दिया है जैसा आजतक कहींभी नहीं छपा है मूल्य १ रु.

चमत्कारज्योतिष भाषार्थसहित.

इसमें ऐसे ऐसे चमत्कारिक प्रश्न हैं कि जिनके जाननेकी प्रतिदिन आवश्यकता रहती है, जैसे आकाशमंडलमें नक्षत्रोंकी पहचान, मूकप्रश्नके चमत्कार, एक समयमें यदि बहुतसे प्रश्न हों तो उनके कहनेका पृथक् पृथक् प्रकार इत्यादि. मूल्यभी सबके सुभीतेके लिये केवल १२ आना.

रात-

१

व्यापार महोदधि प्रथमभाग ।

यह पुस्तक सचमुच व्यापारका समुद्रही है । इस पुस्तकके पास रहनेसे मनुष्य हजारों रुपये माहवार उपार्जन करसकता हैं, हम दावेके साथ कहते है कि व्यवसायी मनुष्य इसको पास रखकर कदापि अर्थहीनताका क्लेश नहीं उठा सकता हमारे पाठक एकवार इस पुस्तकका अवलोकन अवश्यही करे फिर इसकी उपयोगीताका वे स्वयं अनुमान कर लेंगे । इस पुस्तकमें सहस्रों वारके अनुभूतयोग अर्थात् भयानक रोगोंकी चुनी हुई औषधियां, सुगन्धि तेल बनाना, शरबत, अवलेह, अचार, चटनी, रायता, हलुवा मिठाई, पूडियां आदि अनेकों प्रकारके व्यंजन, साबुन हररंगकी लाखबनाना, लिखनेकी स्याही, मुहरकीस्याही, छापेकीस्याही, पत्थलकी स्याही, जूता तथा घोडेके साजकीस्याही, कांच पीतल लोहा जोडनेकी तरकीब तथा उसपर अक्षर निकालना, चूहा मक्खी आदि दुष्ट जीवोंको भागनेकी विधि, घडीका तेल बनाना, तारकोल बनाना जादूगरीके खेल तमाशे जैसे करामती अंगुठी बनाना, अंगुठी नचाना, गन्धक, नमक पारेका गिलास बनाना इत्यादि २ अनेकों योग दिये गये हैं जिनका वर्णन हम इस छोटेसे विज्ञापनमें नहीं कर सकते । मूल्य ८ आना. पांच प्रति इकट्ठी खरीदनेसे १॥ रुपयेमें देंगे.

व्यापार महोदधि द्वितीय भाग.

यह प्रथम भागसेभी बढकर उपयोगी है । कितनेही प्रसिद्ध रोगोंकी अनुभूत औषधियां अनेको खुशबूदार तेल बनानेकी रीति, सुराही, अबीर, जंगाल बनाना, काठपर रंग देना, पुटीन मुहरकी लाख, दूरबीनका शीशा बनाना और भांति भांतिके पकवान, मिठाई, लड्डू आदि बनानेकी रीति सरल भाषामें लिखी गई है । व्यवसायी मनुष्यगण इस पुस्तकसे खूब लाभ उठा सकते हैं और खानेके शौकीनोंके लिये बडे कामकी है । मूल्य ८ आठ आना मात्र ।

प्रथम परीक्षार्थ—रघुवंशके

द्वितीयादि चार सर्ग सटीक.

विदित हो कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारसकी प्रथम परीक्षामें उपस्थित होनेवाले विद्यार्थियोंके उपकारके लिये हमने मुरादाबादके अनुवादकलाप्रवीण पं० व्रजरत्न भट्टाचार्यसे परीक्षामें नियत हुए रघुवंशके द्वितीयादि चार सर्गोंका परीक्षाकी शैलीपर सरल संस्कृतमें व्याख्यान कराके सुवाच्य अक्षरोंमें मुद्रित किया है. परीक्षाके प्रश्नपत्रोंके उत्तर जिस प्रकार लिखे जाते हैं. उसी प्रकार यह व्याख्या बनाई गई है, आवश्यकतानुसार कोशके प्रमाण और व्याकरणके द्वारा शब्दसिद्धिभी दीगई है, समुचित स्थानोंमें टीप्पणीयेंभी दीगई है, जिससे ग्रंथ सभीके लिये उपादेय हो गया है, हम साहसके साथ विश्वास दिलाते हैं इसके अनुसार अभ्यास करनेवाले विद्यार्थी अवश्यही परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे मूल्य ८ आना.

वैद्यकलाधर–प्रथम भाग.

वर्तमानमें यद्यपि विद्वान् भिषग्वरोंने वैद्यक विषयके अनेकों ग्रंथ हिन्दीभाषामें निर्माण किये हैं, जिनसे सर्वसाधारणका बहुत कुछ उपकार हो रहा है, परन्तु वह पर्याप्त कहने योग्य नहीं है, अभी इसकी बडी अवश्यकता है कि प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ सज्जन अपने अपने अनुभूत योगोंको समाचार पत्रोंद्वारा किम्वा पुस्तकाकार प्रकाशित करते रहें, इसप्रकारके निरंतर उद्योगसे हिन्दी भण्डारमें वैद्यक विषयके असंख्यों अनुभविक प्रयोग भर जाँयगे और उनके द्वारा संसारका विशेष हितसाधन होगा इसमें अणुमात्रभी सन्देह नहीं है।

इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये "वैद्यकलाधरका" जन्म हुआ है। आरोग्यरक्षा सम्बंधी विविध उपदेश, निदानका विवेचन, कठिन रोगोंका सहज उपाय, प्राचीन योगोंका नवीन ढंगसे उपयोग, प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्य, डाक्टर और हकीमोंके गूढ विचार एवं सदाचार आदि आयुर्वेद सम्बन्धी अनेकानेक विषयोंका उल्लेख करनाही इस ग्रन्थका मूल सिद्धान्त है। स्वानुभवके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक ग्रन्थोंसे तथा सुधानिधि, आरोग्यसिन्धु, हिन्दीदेशोपकारक वैद्यक पत्रोंसेभी पुस्तक लिखनेमें सहाय्यता लीगई है। दाम १० आना.

पटलपद्धतिगुटका.

भाषाटीकासमेत.

बहुत दिनसे उपासकजन हमसे इस बातके लिये साविशेष अनुरोध कर रहे थे की, कोई संग्रह ऐसा प्रकाशित किया जाय जिसमें उपासना और भजन पूजन संबंधी अवश्य पटल पद्धतियोंका एकत्र समावेश हो। जगदीश कृपासे आज हम उन भगवद्भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये अपने मनोरथमें कृतकार्य हुए हैं। रामपद्धति, रामपटल, सिद्धान्तपटल, मंत्रमुक्तावली और चौवीसगायत्री इन पांच पुस्तकोंको एकत्रित कर प्रचालित सरल हिन्दी भाषामें उनके ऊपर अनुवादभी कर दिया है. इससे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी होगई है। हम आशा करते हैं भगवद्भक्त रामउपासक और अनुष्ठान प्रेमी अपनी २ रुचिके अनुकूल इस संग्रहसे लाभ उठावें. दाम १ रु. इनमेंसे पांचों अलग २ मिल सकते हैं:—

रामपद्धती भाषा टीका. ६ आना.
रामपटल भाषा टीका. ४ आना.
सिद्धान्तपटल भा. टीका. ४ आना.
मंत्रमुक्तावली भा. टीका. २ आना.
चौवीसगायत्री भा. टीका. ३ आना.

पुस्तक मिलनेका पता—

पं० व्ही. के. लोंढे अॅन्ड कंपनी,

"भारतहितैषि" पुस्तकालय, मुंबई नं. ४

Printed by Vinapak Balkrishna Paranjpe, at the Native Opinion Press, No. 2 Angria's Wadi, Girgaon, Bombay & publihsed by Vishvanath Keshao Londhe at the Vishvambhar Press, No. 105, Girgaon Back Road, Bombay.

Tnp.15

इतिपद्मपुराणोक्तंकार्तिकमासमाहात्म्य भाषाटीका समेतम् ॥